

# सन्त विनोबा

मीरा भट्ट

सर्व सेवा संघ प्रकाशन  
राजघाट, वाराणसी - 221 001

## दीप से दीप जलाते चलें

विनोबा-जन्म-शताब्दी के निमित्त, आम जनता के लिए 'सन्त विनोबा' शीर्षक यह पुस्तिका प्रकाशित हुई थी। अल्प समय की अवधि में ही दूसरा संस्करण प्रकाशित हो रहा है, यह हमारे लिए संतोष की बात है। यद्यपि विनोबाजी प्रकाण्ड पण्डित थे फिर भी सामान्यजन उन्हें प्रिय थे। वे कहते थे—भारत का ग्रामीण मनुष्य अत्यन्त प्रिय है, क्योंकि उनकी आँखों में मुझे भारत का इतिहास पढ़ने को मिलता है।

भारत देश के इन सामान्य जनों के पास पहुँचने के लिए, विनोबा चौदह वर्ष तक गाँव-गाँव सभी के कल्याण के वास्ते पैदल घूमे, तभी लोगों ने उनको सन्त कहकर पुकारा और सन्त-सा मान-आदर दिया। सन्त जब तक घूमते रहते हैं, तब तक देश का रक्ताभिसरण होता रहता है। इसीलिए तो विनोबा ने शास्त्राज्ञा सिर पर चढ़ायी कि—चरैवेति, चरैवेति—चलते रहो, चलते रहो।

विचार सतत प्रवाहशाली होता है। आज सन्त विनोबा की पदयात्रा हमारे बीच नहीं है, परन्तु सन्त का विचार-पाथेय तो है ही, उसे अपने जीवन में संचारित होने देंगे, तो अपने भीतर का सन्तत्व भी स्पंदित होगा।

हमारे शास्त्रों में दो प्रकार की दीक्षा का जिक्र है। एक है—पारस दीक्षा, जिसमें लोहे को सुवर्ण बनाने के लिए पारसमणि का स्पर्श कराना जरूरी हो जाता है। दूसरी है—दीपदीक्षा, जिसमें दीये से दीया जलता है। एक दीपक से दीपक की लौ जल गयी, तो इतना पर्याप्त है। फिर वह दीपक तीसरे दीपक को जला सकता है।

विनोबा की विचार-दीक्षा इस दीप-दीक्षा जैसी सर्वसुलभ है। आयें, हम भी दीप से दीप जलाकर अपने राष्ट्रीय-जीवन की यथार्थ दीपावली के दीपक को प्रकाशित करें।

25 मार्च, 1995

—मीरा भट्ट

447 बी, शिशुविहार के सामने  
भावनगर - 264 001

## अनुक्रम

	पृष्ठ
1. बचपन	3
2. बापू के चरणों में	5
3. वर्धा के वटवृक्ष की छाँव में	7
4. जेल भी एक तीर्थधाम	11
5. पनवार के परंधाम में	15
6. भूदान-आरोहण	18
7. सूक्ष्म कर्मयोग	24
8. अन्तिम पर्व	28

## बचपन में (1895 से 1916)

विनोबाजी का असली नाम तो है—विनायक नरहरि भावे। परन्तु भारतभर में वे ‘सन्त विनोबा’ अथवा ‘आचार्य विनोबा भावे’ के नाम से सुविदित हैं। उनका जीवन सन्तों के जीवन-जैसा बीता, इसलिए वे ‘सन्त’ के नाम से प्रसिद्ध हुए। वे अत्यन्त विद्वान् भी थे। वेद-वेदान्त-गीता-जैसे अनेक शास्त्र-ग्रन्थों का उन्हें गहरा अभ्यास था। तदुपरान्त यह सारा ग्रन्थस्त ज्ञान वे अपने जीवन में चरितार्थ करने का पुरुषार्थ करते रहे, इसलिए सुशिक्षित लोगों के जगत् में वे ‘आचार्य’ नाम से विख्यात हुए।

उनका असल वतन महाराष्ट्र। मराठी उनकी मातृभाषा। कोंकण प्रदेश का गागोदा गाँव उनकी जन्मभूमि। 1895 के सितम्बर की 11 तारीख को गागोदा में उनका जन्म हुआ। उनके परदादा को यह गागोदा गाँव उनकी वीरता के बदले में पुरस्कार के रूप में प्राप्त हुआ था। उनके अपने दादा शम्भूराव भावे भी धर्मप्रिय मनुष्य थे। भगवान के प्रति अपार भक्ति विनोबा को विरासत में यदि किसी से प्राप्त हुई हो तो वे अपने दादाजी तथा मैया रबुमाई की ओर से।

दादाजी पूजा-पाठ करते। विविध व्रत-उपवासादि उनका चलता रहता। बच्चों को अच्छे-अच्छे श्लोक तथा प्रार्थना सिखाते। माँ तो माधुर्य की मूर्ति! गोरा वर्ण और भक्तिसभर नयन! बातों ही बातों में बच्चों के जीवन का उदात्त शिक्षा वे देतीं।

### प्रथम गुरु—माता

विनायक को तीन छोटे भाई तथा एक बहन थी। बालकृष्ण, शिवाजी, दत्तात्रेय और शान्ताबहन! गागोदा में अपने दोस्तों के साथ आसपास की पहाड़ियों में घूमते रहते और कुदरत की गोद में खेलते रहते। उनके घर में कटहल का एक पेड़ था। कटहल का फल बहुत बड़ा होता है। बच्चों का मनभाता फल! जब वह फल पेड़ पर पक रहा हो, तब से मुँह में पानी छूटना शुरू हो जाता! फल उतारने की प्रतीक्षा में दिन गिने जाते। पेड़ पर से जैसे ही फल उतारा जाता, बच्चे माँ को घेर लेते। परन्तु बच्चों के मुँह में फल का टुकड़ा जाय इसके पहले अड़ोस-पड़ोस के घरों में देने के लिए बच्चों को भेज देतीं। उधर बच्चों को अपनी सीधी-सादी भाषा में समझातीं—देखो बच्चे! तुम को राक्षस बनना तो पसन्द नहीं है न! देव ही बनना पसन्द करोगे न? जो अपने पास रबुद के वास्ते रख लेता है, वह है ‘राक्षस’ और दूसरों को जो देता है—वह है ‘देव’।

विनोबाजी कहते हैं—दूसरों को देने का आनन्द, खिलाकर फिर खाने का संस्कार मुझे माँ से मिला। भूदान का मूल इसीमें है।

### भक्ति का साक्षात् शिक्षण

माँ को याद करके अनन्त बातें विनोबा कहते रहते। माँ की बातें करने से वे कभी अघाते नहीं थे। ऐसी थी उनकी मातृभक्ति! बचपन का एक दृश्य विनोबा कभी भूल नहीं पाये। जितनी बार वह दृश्य उनकी आँखों के समक्ष आकर खड़ा रह जाता, उतनी बार माँ के पुण्य-स्मरण से उनकी आँखों में से अश्रुधारा बह निकलती।

माँ का काम दिनभर चलता रहता। भोर में ही उठ कर चक्की पीसते हुए भजन गाती रहतीं, फिर शुरू हो जाता काम का ताँता। दोपहर में सब को खिला-पिला कर, सारे कामों से निपटकर अपने देवघर में जाकर भगवान के सामने बैठतीं और मराठी में छोटी-सी प्रार्थना गातीं। फिर अपने दोनों कान पकड़ कर कहतीं, ‘हे अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायक, मेरे अपराध तू क्षमा कर!’ और फिर उनकी आँखों में से अविरत आँसू बहते। इस छोटे-से दृश्य को याद करके आँसू-भरी आँखों से विनोबा कहते—अनुभव से भरे अनेक ग्रन्थ मुझे पढ़ने को मिले हैं और सत्संग भी बहुत मिला है। उन सब को एक पलड़े में रख कर, दूसरे पलड़े में मुझे साक्षात् भक्ति का यह जो शिक्षण मिला, उसको सोचता हूँ तो इस दर्शन का वजन बाकी सब चीजों से बढ़ जाता है।

भूदान-पदयात्रा में जब बड़ौदा जाना हुआ, तब अपने रावपुरा के उस पुराने मकान में वे ले गये। घर में दाखिल होते ही तुरन्त वे देवघर के स्थान पर पहुँच कर ध्यानस्थ हो गये। थोड़ी ही देर में आँखों से गंगा-यमुना बहने लगी। माता-पुत्र की साक्षात् भक्ति का यह दूसरा पावनकारी दृश्य था, जिसको देखनेवाले धन्य हो गये।

माँ के लिए बेटा कहता है—‘हे माता, तुमने मुझे जो दिया है वह और किसी ने भी नहीं दिया है, परन्तु मृत्यु के बाद भी तुम

जो दे रही हो, वह तुमने जीवित होते हुए भी नहीं दिया। आत्मा के अमरत्व का इतना ही सबूत मेरे लिए पर्याप्त है।’

ऐसा विरल था—माँ-बेटा का अटूट सम्बन्ध!

माँ विनायक को दुलार से ‘विन्या’ कहतीं। रोज भोजन से पहले पूछ लेतीं—‘विन्या, तुलसी को पानी दिया? गाय को खाना दिया?’ दादाजी जैसे माँ भी उदारदिल थीं, सेवा की मूर्ति थीं। घर में परिवार-जन के अलावा दूसरे भी लोग रहते, परन्तु सब के प्रति माँ का समान व्यवहार रहता।

### पिता में कला-विज्ञान का संगम

पिता नरहरि भावे को विज्ञान अत्यन्त प्रिय था। कला के भी वे प्रेमी थे। उनका कमरा मानो प्रयोगशाला ही था। विविध रंग-संयोजन करते रहते। हाथ से बनी चीजें—उनकी प्रिय प्रवृत्ति। एक बार विनोबा को ऐसा पत्र लिखा था, जिसमें कागज भी उन्होंने खुद से बनाया था, कागज पर की स्याही, लिखने की कलम भी उन्होंने स्वयं बनायी थी। लिखनेवाले तो खुद थे ही। इस प्रकार सारा सौ फीसदी स्वदेशी। गांधीजी के स्वदेशी विचार के साथ उनका मेल था।

पिताजी बड़ौदा में नौकरी करते थे। विनायक दस साल का हुआ, तब तक परिवार गागोदा में रहता था। दीपावली में पिताजी घर आते तब बच्चे मिठाई की प्रतीक्षा करते। एक बार पिता का दिया हुआ पैकेट लेकर विन्या दौड़ता-दौड़ता माँ के पास पहुँचा। माँ ने खोल कर देखा तो उस में किताबें थीं—रामायण और भागवत! माँ बोलीं— ‘बेटा, तुम्हारे पिताजी तो अद्भुत मिठाई लाये हैं। इससे अच्छी दूसरी मिठाई कौन-सी हो सकती है?’

बड़े हो जाने पर विनोबा को सुन्दर पुस्तक से बढ़ कर कोई मिठाई अच्छी नहीं लगी।

### बालब्रह्मचर्य का संकल्प

गागोदा के भक्ति-भाव से भरे वातावरण में और मुख्य तो अपने पूर्व जन्म की अनमोल कमाई के कारण दस वर्ष की उम्र में ही विनायक को संकल्प लेने की श्रद्धा जगी कि—मैं आजीवन ब्रह्मचर्य धारण करूँगा। इस प्रकार, विनोबा सच्चे अर्थ में ‘बालब्रह्मचारी’ थे। उसके बाद के जो वर्ष बड़ौदा में गुजरे, उसमें एक ओर थी—विद्यालय की पढ़ाई तो दूसरी ओर थी, आदर्श ब्रह्मचारी और संन्यासी बनने की साधना। उपनिषद्, गीता, मराठी सन्तों के धर्मग्रन्थ एक के बाद एक पढ़ते चले। अभंग-श्लोक-भजनों का बराबर रटन चलता। जीवन भी सादा और मेहनती। जमीन पर दरी बिछाकर सोते। भोजन भी बिना मिर्च का फीका ! घण्टों बाहर एकान्त में घूमने चले जाते। हमउम्र के दोस्तों की एक टोली ही बन गयी थी। उनके साथ घण्टों तक ज्ञानचर्चाएँ चलती रहतीं। तभी से सब को प्रतीत हो गया था कि विनायक कोई विरल आत्मा है।

### पढ़ाई में भी नम्बर वन

बुद्धि तो प्रखर थी ही। शाला की पढ़ाई तो उनके मन से एक खेल ! गणित उनका प्यारा विषय और उस पर प्रभुत्व भी ऐसा कि शिक्षक महाशय द्विविधा में पड़ जायँ, तो विनायक इसे सुलझा दे। पिताजी के आग्रह के कारण, दूसरी भाषा के तौर पर फ्रेंच रखा था। परन्तु माँ कहतीं—‘यह सबेरे-सबेरे क्या येस-फेस करते रहते हो?’ संस्कृत सीखो, संस्कृत।’ और भविष्य में संस्कृत भी ऐसा सीख लिया कि मातृभाषा के बाद उसीका नम्बर लगे।

रखुमाई को धार्मिक पुस्तक पढ़ने की दिलचस्पी थी। परन्तु संस्कृत गीता कुछ समझ में नहीं आती थी और मराठी अनुवाद भी ऐसी कठिन भाषा में प्राप्य थे कि सारा सिर पर से गुजर जाता ! पल्ले कुछ नहीं पड़ता। एक दिन माँ बोलीं, ‘विन्या बेटा, मैं समझ सकूँ ऐसा अनुवाद गीता का, तुम ही क्यों नहीं कर देते?’

छोटे-से बालक पर माँ का इतना बड़ा विश्वास! कालान्तर में इसी विश्वास से मराठी भाषा में गीता पद्यरूप में अनूदित हुई। माँ की याद में विनोबा ने उसे नाम दिया—गीताई, गीत+आई, आई यानी माँ! आज महाराष्ट्र में घर-घर यह मराठी पद्यानुवाद पहुँच गया है और असंख्य माताओं के लिए जीवन का पाथेयरूप बन गया है।

## ब्रह्म-प्राप्ति के लिए गृहत्याग

ब्रह्मचर्य और संन्यास की धुन तो थी ही, उसमें आजादी की तमन्ना भी जगी। अपना भारत देश गुलाम हो तो कैसे चलेगा? भारत से अंग्रेजों को हटाने के लिए जो क्रान्ति करनी पड़े, उसके वास्ते सिर भी देना पड़े तो वह भी अर्पण कर देने की तमन्ना थी।

बंगाल जैसी क्रान्ति की मशाल जगाने को तड़पन जगती! इस तरह हृदय में विचारमंथन चल रहा था, उतने में इण्टर की परीक्षा देने के लिए बम्बई जाना था। परन्तु बम्बई ले जानेवाली गाड़ी में से बीच में ही सूरत उतरकर भगवान को प्राप्त करने के लिए काशी का रास्ता पकड़ लिया और घर पत्र लिख दिया कि 'घर छोड़ कर कहीं जा रहा हूँ। आप को भरोसा होगा ही कि मैं चाहे जहाँ जाऊँगा, परन्तु मेरे हाथों से कभी कोई अनैतिक काम नहीं होगा।'

1916 में 21 साल की उम्र में इस बालवैरागी ने गृहत्याग किया। घर छोड़कर हमेशा के लिए चले जानेवाले बेटे के बारे में माँ बोलीं; 'अब वह वापस नहीं आयेगा। मैं उसको अच्छी तरह जानती हूँ। वह कोई नाटक-सिनेमा देखने नहीं गया है। वह तो ब्रह्म की खोज करने निकला है। मुझे इसका गौरव है।'

घर छोड़ने की बात उनके अन्तर मन में वर्षों से अंकित हो चुकी थी। शंकराचार्य के शिष्य जो ठहरे! घर छोड़ा, परिवारजनों की आसक्ति तो थी ही नहीं, बल्कि परिवार का गौरव भी उन्होंने ही बढ़ाया। दो छोटे भाई भी संन्यास के पथ पर चले और महाराष्ट्र के इतिहास की सन्त-त्रिपुटी-बन्धु-त्रिपुटी निवृत्ति, ज्ञानदेव और सोपान जैसी ही तीन संन्यासियों की नयी बन्धु-त्रिपुटी भारत को मिली।

### बापू के चरणों में 1916 से 1921

अथातो ब्रह्मजिज्ञासा-ब्रह्म की खोज के वास्ते हमेशा के लिए घर छोड़ कर काशी पहुँच गये। साथ में भोलाराम नाम का एक बालमित्र भी था। काशी में दुर्गाघाट के पास चौथे मंजिले पर एक छोटी-सी कोठरी किराये पर ली। अन्न-क्षेत्र में एक बार का भोजन मिल जाता था, उपरान्त दो पैसे दक्षिणा में भी मिलते थे। तो उसमें से दही और उबली सब्जियाँ खा कर शाम का भोजन निपटा लेते थे।

काशी यानी ज्ञान की नगरी। वहाँ बड़े-बड़े पण्डित रहे। उनके पास वेद-उपनिषद्-गीता का ज्ञानाभ्यास शुरू किया। परन्तु सामान्य विद्यार्थी को सीखने में वर्षों लगे वह ज्ञान चन्द महीनों में सीख लिया। अन्नक्षेत्र में लम्बी-लम्बी पंक्तियों को भोजन परोसने में एक-डेढ़ घण्टा बीत जाता, उस वक्त दूसरे विद्यार्थी गप्पें लगाते रहते, तब विनोबा पूरी गीता का पारायण कर लेते थे।

परन्तु दुखदायक घटना यह हुई कि विनायक का वह बचपन का दोस्त भोला बेडेकर दो महीनों में ही बीमार पड़ गया और देखते-देखते वह भगवान के घर पहुँच गया। विनायक ने मंत्रोच्चार के साथ उसका अग्नि-संस्कार किया।

### शान्तिमय क्रान्ति के चरणों में

इस तरह काशी-निवास में अखण्ड ज्ञानयज्ञ चलता था। वैसे तो ब्रह्म-प्राप्ति द्वारा चिरशान्ति प्राप्त करने के रास्ते पर निकल पड़े थे, फिर भी मन में से बंगाल की क्रान्ति का आकर्षण अभी तक कम नहीं हुआ था। एक तरफ हिमालय की शान्ति पुकारती थी, दूसरी ओर बंगाल की क्रान्ति! इस प्रकार की द्विविधा थी। इस बीच काशी में उन्हीं दिनों में गांधीजी के दिये हुए एक व्याख्यान के बारे में गरमागरम चर्चा लोगों में चल रही थी। वह व्याख्यान काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में इकट्ठे हुए श्रोताओं के सामने दिया गया था। उसमें गांधीजी ने राजा-महाराजाओं के दरबारों के दबदबे पर कड़ा प्रहार किया और वाइसराय को भी खरी-खोटी सुनाकर, जनता को निर्भयतापूर्वक आजादी की लड़ाई में हिस्सा लेने हेतु आवाहन किया। इस भाषण की रिपोर्ट अखबार में विनायक ने पाढ़ था। मन में थोड़ी शंकाएँ खड़ी हुईं, इसलिए गांधीजी को पत्र लिखा। गांधीजी ने इस पत्र का जवाब देते हुए लिखा कि—इस प्रकार के प्रश्नों का समाधान बातों से नहीं होता, जीवन जीने से होता है।' हस बात का विनोबा पर प्रभाव पड़ा और गांधीजी के लिखने पर वे अहमदाबाद सत्याग्रह आश्रम में गांधी—बापू—के पास पहुँच गये। वहाँ बापू के चरणों में उनको शान्ति और क्रान्ति का संगमतीर्थ ही प्राप्त हो गया।

यह दिन था—7 जून, 1916 का। विनोबा अहमदाबाद के कोचरब आश्रम में पहुँचे, वहाँ बापू सब्जी काट रहे थे। देश का इतना महान् नेता सब्जी काटे यह तो स्वप्न में भी सोचा नहीं था। बिना कहे श्रम और स्वाश्रय का पाठ पढ़ने को मिल गया। फिर तो

लम्बी बातचीत चली। पूछताछ हुई। सब कुछ जानने के बाद बापू ने कहा, “लेकिन तुम इतने कमजोर क्यों हो ? आत्मज्ञानी कभी बीमार नहीं पड़ता।” विनोबा कहते हैं कि पहली ही मुलाकात में यह दूसरा पाठ पढ़ने को मिला कि योगी कभी रोगी नहीं होता।

आश्रम में स्थान तो मिल गया। परन्तु विनायक था अत्यन्त निःसंग। किसी के साथ ज्यादा बोलना-करना नहीं। काम से काम। भाषा भी थोड़ी रूखी-सूखी! बस, अपने काम में डूबे हुए रहते और फिर अपनी कोठरी में ध्यान-मनन-चिन्तन चलता! परन्तु चाहे रत्न चीथड़े में ही क्यों न बँधा हो, वह कब तक छिपा रह सकता है? धीरे-धीरे एक-एक करके सारी बातें आश्रमवासियों को मालूम होती गयीं। अरे, यह मनुष्य तो संस्कृत जानता है। कभी तत्त्वचर्चा भी करना जानता है। संन्यासी है। और फिर तो विनायक में छिपे गुणों ने अपना ऐसा जादू फैलाया कि आश्रमवासियों के लिए वे ‘विनायक’ के स्थान पर ‘विनोबा’ बन गये। महाराष्ट्र में संतों के नाम के पीछे आदर जताने के लिए ‘बा’ लगाया जाता है—ज्ञानोबा-तुकोबा-बिठोबा वैसा ही यह ‘विनोबा’।

### दुर्लभ रत्नों में से एक

बापू ने तो उनका सत्व पहचान ही लिया था। उसमें भी जब एक साल के लिए अपना आरोग्य सुधारने तथा अध्ययन के वास्ते बापू से इजाजत लेकर बाहर गये, तब उस एक वर्ष में जो कुछ किया, उसका ब्यौरा बापू को एक पत्र में लिख भेजा। उसे पढ़कर बापू बोल उठे— ‘गोरख ने मछंदर को हरा दिया! भीम है भीम !’ और फिर प्रत्युत्तर में लिखा—‘तुम्हारे लिए कौन-सा विशेषण काम में लूँ यह समझ में नहीं आता। आपका प्रेम और चारित्र्य मुझे मोहित कर लेता है। बड़ी सेवा के तुम निमित्त बनोगे। ईश्वर तुम्हें दीर्घायुषी बनाये और तुम्हारा उपयोग हिन्द की उन्नति के लिए हो।’

दीनबन्धु एण्ड्रूज को उन्होंने लिखा था— ‘लोग आश्रम में कुछ पाने के लिए आते हैं। परन्तु विनोबा तो आश्रम को अपने पुण्यों से सिंचित करने आये हैं। वे पाने नहीं, देने के लिए आये हैं। आश्रम के दुर्लभ रत्नों में से वे एक हैं।’

वाई की प्राज्ञशाला में और महाराष्ट्र की यात्रा में एक साल से वे बाहर रहे। उस विषय में विनोबा ने सहजतापूर्वक जो लिखा, वह कितना प्रेरक है, यह उन्हीं के पत्र द्वारा समझें—

‘जिस प्रलोभन से मैं बाहर रहा, उसके विषय में मेरा काम इस प्रकार हुआ: 1. उपनिषदें, 2. गीता, 3. ब्रह्मसूत्र और शांकरभाष्य, 4. मनुस्मृति, 5. पातंजल योगदर्शन—इन सारे ग्रन्थों का मैंने अध्ययन किया। इसके अलावा, 1. न्यायसूत्र, 2. वैशेषिक सूत्र, 3. याज्ञवल्क्य स्मृति—ये सारे ग्रन्थ मैं पढ़ गया।

इनके अलावा, गीता-उपनिषद् ज्ञानेश्वरी तथा भाषा के वर्ग भी चलाये। 400 मील का पैदल प्रवास किया, जिसमें गीता पर पचास प्रवचन हुए। वाई में एक विद्यार्थी मण्डल की स्थापना की।

यह सारा जानकर किस गुरु का और किस पिता का अन्तर गौरव से उछल नहीं उठेगा?

### ज्ञान, कर्म, भक्ति का तपोयज्ञ

उसके पश्चात् साबरमती आश्रम में जो जीवन गुजरा वह तो प्रचण्ड कर्मयोगी का तपस्वी जीवन ही था। चर्खे पर आठ-आठ घण्टे कातना। वाणी-वर्तन और विचार के बीच का फासला कम करने का सतत यज्ञ चलता। बापू पूछते—‘ऐसे शरीर से इतना श्रम कैसे कर लेते हो?’ तब विनोबा का थीड़े-से शब्दों में जवाब मिलता—‘काम करने की इच्छाशक्ति से—संकल्पबल से!’

जैसी प्रचण्ड कर्मशक्ति थी, वैसी ही प्रबल थी अध्ययनवृत्ति। अर्थशास्त्र, गणितशास्त्र, खगोल-भूगोलशास्त्र, भाषाशास्त्र—किसी में भी वे पीछे नहीं रहे। शब्दकोश के अध्ययन में तो वे ऐसे खो जाते कि खुद ही कहते कि—मेरा नाम ‘कोशानन्द’ रखना चाहिए।

### गीता को आचरण में

बचपन ही से गीता का आकर्षण था। परन्तु मुख्य आकर्षण तो था—गीता को जीवन में जीने का, प्रत्यक्ष व्यवहार में गीता को उतारने का। उसमें भी, मैं देह नहीं हूँ—आत्मा हूँ—गीता का यह सिद्धान्त तो मानो उनके जीवन का ध्रुवपद ही था।

एक बार साबरमती नदी में नहाते-नहाते बहने लगे। तैरना तो आता नहीं था। अब तो डूबना ही था, इसलिए घाट पर नहा रहे लोगों से चिल्लाकर कहा—‘बापू को कहना कि विनोबा बह गया है, परन्तु उसका दुख न करें। देह नश्वर है, आत्मा अमर है।’

घाट पर की स्त्रियों को लगा 'बचाओ-बचाओ' की जगह यह मनुष्य यह क्या बोल रहा है? परन्तु आश्रम के पुंडलिकजी का ध्यान गया। एकदम वे नदी में कूद पड़े। उतने में बीच में कोई बड़ा पत्थर आ जाने से विनोबा उसी पर चढ़ गये। उस क्षण में भी उनके मुँह में यही मंत्रगान था—आत्मा अमर है। पुंडलिकजी तो दंग रह गये।

ऐसा ही एक दूसरा प्रसंग काकासाहब के साथ घटा। तीसरे एक साथी के साथ सब पैदल प्रवास पर निकले थे। एक दिन मुकाम पर पहुँचते-पहुँचते शाम हो गयी, अभी तो बीच रास्ते में ही थे। उतने में एक पुल आया। पुल पर सब चलने लगे। पुल पर की लकड़ी की पटरी के बीच में खाली जगह थी, जहाँ से नीचे बहती नदी का पानी दिखायी पड़ता था। जरा-सी चूक होने पर सीधे नीचे ही जाना था। जल्दी-जल्दी पुल पार करने का तीनों ने सोचा। दो साथी तो आगे निकलकर पार हो गये, परन्तु विनोबा अभी बीच राह में ही थे। उतने में रेलगाड़ी की धमधम की आवाज सुनाई दी। साथियों के मन तो चिन्ता में पड़ गये। विनोबा की तो आँखें भी कमजोर थीं, और अन्धेरा भी घिर रहा था। क्या होगा? छाती की धड़कन बढ़ गयी। जैसे विनोबा नजदीक पहुँचे काकासाहब ने चिल्लाकर कहा—जम्प टु द लेफ्ट—बायीं ओर कूदिये। विनोबा को पटरी पर से जैसे ही नीचे कूदते हुए देखा, तब काकासाहब ने सुना कि विनोबा कोई अभंग गुन-गुना रहे थे।

पीछे कालदूत पड़ा था, वैसे क्षणों में भी गीता का यह लाडला बेटा बह जाने की चिन्ता छोड़कर आत्मा का गुणगान करने में लीन था। यह देखकर किसका दिल हिल नहीं उठेगा? देह के प्रति यह जो अनासक्ति थी, वह शंकराचार्य की प्रज्वलित वैराग्यभावना में से प्राप्त हुई थी। गीता ने उसको परिपुष्ट किया था। मानो उनका पिण्ड ही सच्चे वेदान्ती का था।

आश्रम की अनेक घटनाएँ हृदय को जगा दे, ऐसी रोमांचक हैं। संक्षिप्त में कहना हो तो सत्याग्रह आश्रम की विनोबा की साधना यानी सच्चे स्वराज्य-सैनिक की साधना।

### माँ की गोद में से वेदमाता की गोद में

1918 में सारे भारत में इन्फ्लूएन्जा फैला और हजारों लोग उसमें मरे। विनोबा की माँ, छोटा भाई दत्त और बहन शान्ता भी बीमार हुए। शिवाजी और बालकृष्ण तो विनोबा के पीछे-पीछे गांधीजी के पास पहुँच गये थे। उस समय बापू ने विनोबा को सेवा-शुश्रूषा हेतु घर भेजा। दत्त तो इस रोग का शिकार हो गया और माँ भी बच नहीं सकीं। माँ का वे खुद अग्निसंस्कार करेंगे, ऐसा विनोबा का रुख था, परन्तु कौटुम्बिक परम्परा के अनुसार वह कार्य किसी गोर-पुरोहित का था। विनोबा परम्परा के अधीन नहीं हुए और माँ के इस लाडले बेटे ने माँ के खण्ड में वेदपाठ पढ़ना आरम्भ किया। कहते हैं—माँ गयीं और मुझे वेदमाता की गोद में रखती गयीं।

संन्यासी थे, फिर भी माता-पिता के लिए मन में अपार आदर-भक्ति था। माँ के लिए तो उनका हृदय इतना आर्द्र था कि माँ की मृत्यु के बाद, उनके यादगाररूप दो चीज साथ में ले ली। एक थी—माँ की साड़ी, दूसरी थी माँ अन्नपूर्णा की मूर्ति, जिसकी पूजा माँ अखण्ड किया करती थीं। माँ के ये दोनों यादगार सालों तक साथ में रहे। सिरहाने की जगह साड़ी ने ली, परन्तु जीवन में खादी का प्रवेश हुआ और साड़ी को साबरमती में बहा दी। ध्यान के वक्त माँ की वह मूर्ति सामने रखते। मूर्ति की कोई नित्य पूजा करे, ऐसी भक्तिमान स्त्री की खोज में थे, वह आखिर काशीबहन गांधी में प्राप्त हो गयी, इसलिए वह मूर्ति उन्हीं को समर्पित कर दी।

ऐसी ही एक मनमोहक कहानी 'मोहिनी' की है। बापूके दिवंगत होने के बाद बापू जिस कम्बल को ओढ़ने के लिए इस्तेमाल करते थे, वह कम्बल विनोबा को यादगार रूप प्राप्त हुआ था। उसको भी सालों तक बिस्तर के रूप में नीचे बिछाकर सोते। मोहन की स्मृति इसलिए नाम दिया—मोहिनी! कविहृदय था न! कवि तो थे, परन्तु कवि-क्रांतदर्शी! संन्यासी-वैरागी सही, परन्तु गुणानुरागी वैरागी।

### वर्धा के वटवृक्ष की छाँव में

1921 से 1938

1916 के बाद का समय, यानी आजादी की लड़ाई का तीव्रतम काल! अंग्रेजों के सामने गांधीजी की सत्याग्रह सेना अपना सिर हाथों में लेकर निकल पड़ी थी। बापू आदेश देते थे—जेल भरो! तो लाखों लोग गिरफ्तार हो जाते थे। लाठी झेलते थे, गाँव-गाँव चना-मुरमुरा खाकर पैदल घूमते थे। गांधीजी के सिर पर सारे देश की जिम्मेवारी थी। अहमदाबाद देश के पश्चिमी भाग में पड़ जाता

था। इसलिए स्वराज्य आन्दोलन के भामाशा जैसे सेठ जमनालाल बजाज ने बापू से आग्रह किया कि वे मध्य प्रदेश के मध्य में यानी वर्धा में आश्रम बनाकर रहें। बापू तो नहीं गये, परन्तु एक आश्रमवासी दम्पति को भेज दिया। परन्तु वे कुछ ही दिनों में बीमार हुए, इसलिए जमनालालजी ने विनोबा की माँग की।

बापू ने विनोबा से पूछा। विनोबा का तो एक ही जवाब था—‘बापू आप जो भी काम सौंपेंगे, यथाशक्ति उसे करना ही है।’ और 1921 की आठवीं अप्रैल और गूडी प्रतिपदा के दिन विनोबा अपने छह साथियों के साथ वर्धा पहुँचे। वर्धा यानी महाराष्ट्र के नागपुर के पास का एक तालुका-गाँवा जिस दिन पहुँचे उसी दिन जमनालालजी के बगीचे में हाथ चक्की की स्थापना की। उसकी पूजा कर, उस पर पीसकर आश्रम की पुनः स्थापना करके मंगल प्रयाण प्ररम्भ किया।

विनोबा के पूरे बारह वर्ष का एक तप इस आश्रम को संप्राप्त हुआ। ज्ञान, कर्म और भक्ति के त्रिवेणी संगम से आश्रम की सुगन्ध चारों ओर फैल रही थी। अनेकानेक युवकों का चारित्र्यनिर्माण यहाँ हो रहा था। गांधीजी ने आश्रमवासियों के लिए ग्यारह जीवनव्रतों का पाथेय मंगल प्रभात के रूप में प्रस्तुत कर दिया था। उसको विनोबा ने श्लोकरूप देकर सारे भारत में प्रार्थना के तौर पर प्रसिद्ध कर दिया था। इन एकादश-व्रतों को साकार करने की साधना यहाँ चलती।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, असंग्रह।  
शरीरश्रम, अस्वाद, सर्वत्र भयवर्जन ॥  
सर्वधर्मी समानत्व, स्वदेशी स्पर्शभावना।  
ही एकादश सेवावीं नम्रत्वे व्रतनिश्चये॥

### सही रक्षक-एकादशव्रत

एक मार्मिक घटना। विनोबा के बालमित्र मोधेजी एक बार विनोबा से कहने लगे—‘आश्रम के रक्षण के लिए एक अच्छा-सा कुत्ता ढूँढ़ लाया हूँ। अब कोई चिन्ता नहीं रहेगी।’ तब धीरे से विनोबा ने कहा—‘आश्रम की रक्षा कुत्ता करेगा या एकादशव्रतों का पालन?’

विनोबा की एकाग्रदृष्टि अर्जुन-सी वेधक और एकलक्षी थी। कभी भी अपना निशाना चूक जाय ऐसी विचलित या चंचल नहीं होती। गांधीजी ने अन्तिम मनुष्य के साथ एकरूप होकर राममय होने का जीवनपाथेय दिया था। आश्रमी जीवन में विनोबा की जो अन्त्योदय साधना प्रकट हुई, वह सचमुच में अपूर्व थी। आश्रमवासियों को भी ‘सूत के तार से स्वराज्य’ हासिल करने के यज्ञ में हिस्सेदार होना था, इसलिए खादी का समग्र शास्त्र-निर्माण करने के प्रयोग वहाँ चलने लगे।

### अन्तिम मनुष्य के साथ

1921 से 1951 तक, जेलवास का समय बाद करके विनोबा सतत रचनात्मक कामों में लगे रहे। क्या-क्या काम उन्होंने नहीं किया? आश्रम में योग-प्रयोग-उद्योग की त्रिवेणी चलती थी। बापू के मन में कोई तरंग उठा कि तुरन्त विनोबा-मण्डली उसका कार्यान्वयन करती। भारत के अन्तिम छोर पर खड़े मनुष्यों के साथ एकरूप होने की साधना यानी भंगीकाम, चमारकाम, बुनाई-कताई जैसे कामों का तो समाविष्ट होना ही था।

उस वक्त विनोबा ने तो जीवन-आरोहण की कठिन चढ़ाई की शुरुआत कर दी थी। प्रतिदिन 25 गज कपड़ा कोई बुने, तो दो बार का भोजन उपलब्ध हो! आठ घण्टों की जगह, बारह-बारह घण्टों का अविरत परिश्रम चले तो भी काम पूरा नहीं होता था। एक बार तो रात को साढ़े नौ बजे तक वे बुनते रहे।

फिर हाथ से कातने की बात आयी। फिर रुई को धुनने का, तुनाई आदि का काम भी सामने आया। कपड़े की समूची प्रक्रिया में कुशलता लाकर उस पर निर्वाह करने की बात थी। विनोबा रोज चार गुण्डी सूत कातते। कभी बायें हाथ से, कभी दायें हाथ से, कभी खड़े-खड़े, कभी बैठे-बैठे। कताई करते-करते विद्यार्थियों को पढ़ाते। नौ घण्टे तो सहज हो जाते। 1935 के वे दिन! माहभर का भोजन छह रुपये में प्राप्त हो सकता था। उस वक्त विनोबा 50 तोला दूध, 30 तोला सब्जी, 15 से 20 तोला गेहूँ, 4 तोला तेल, थोड़ा-सा गुड़ या शहद या फल—यह उनका भोजन था। उस वक्त चर्खा संघ 16 लट के दो, सवा दो आने मजदूरी देता था। और रोज का खर्च था आठ आना! खाने पर ही कटौती करनी पड़ती थी, तब दूसरे खर्च की तो बात ही कहाँ?

बापू को विनोबा के स्वावलम्बन के प्रयोग के समाचार मिले। उन्होंने अथक मेहनत की, तब मुश्किल से रोज का चार आने दिलाने तक वे लोगों को समझा पाये। दिनभर पसीना बहानेवाले को भी पूरी मजदूरी नहीं दे पाते इसकी गहरी व्यथा गांधीजी के अन्तर में रही।

उसके बाद चली तकली की उपासना। 1934 में तो तकली का पारायण ही चला। विनोबा कहते हैं—तकली पर आश्रमवासियों ने जो तपस्या की है, उसकी कहानी तो रोबिन्सन क्रुसो-जैसी रसिक और रोमांचक है। विनोबा ने एक पुस्तक भी लिखा था—‘मूलोद्योग-कातना।’ वे कहते रहते थे—एक है तकली, बाकी सारी है तकलीफ। तकली को वे ‘कर्ममयी उपासना’ कहते थे।

रोज दो आने में गुजारा करना था। तीन बार का भोजन सात पैसे में और एक पैसे में जलावना। गरीब मनुष्य के साथ एकरूप होना—गरीब मनुष्य को गुजारा चलाने के लिए दो आने मिलते हैं, तो हमें भी दो आने में ही गुजारा करना है।

उस वक्त विनोबा क्या खाते थे, जानना है? सुबह नाश्ते में एक तोला मूँगफली और ढाई तोला गुड़, दोपहर में तीस तोले ज्वार की रोटी, साढ़े सात तोला दाल, दो तोला सब्जी, नाप के अनुसार तेल-नमक! शाम को भी यही भोजन था।

विनोबा कहते हैं—‘मैंने अर्थशास्त्र के ढेर सारे ग्रन्थ पढ़े नहीं हैं। पाँचके पुस्तक पढ़ लिये हैं। परन्तु इस एक वर्ष में तो मुझे अर्थशास्त्र का पर्याप्त ज्ञान मिल गया।’

उसी वर्ष दूसरा भी एक प्रयोग प्रारम्भ हुआ—रोज कमाना और रोज खाना। कमाई तो चालू मजदूरी में जो मिले वही ही पाना था। दोपहर में खाना हो जाने पर हिसाब निकलता कि शाम के वास्ते कितने पैसे बचे हैं, उसके मुताबिक शाम का भोजन मिलेगा।

## पद्धति-लोकशाही की

वर्धा आश्रम को शुरू हुए एकाध साल हुआ होगा। आश्रम में दो पीढ़ियाँ एक साथ साधना कर रही थीं। एक दिन प्रार्थना में सबके सामने विनोबा ने नयी बात रखी—आज तक ये छोटे लोग बड़ों के साथ रह कर काम करते थे। अब ये छोटे लोग एक-एक जिम्मेवारी उठारेंगे और बड़े लोग उनकी सूचनानुसार काम करेंगे। हमें ब्रिटिश सरकार-जैसी नौकरशाही खड़ी नहीं करनी है। हम सभी को सब कामों में प्रवीण होना है। व्यवस्था का काम तरुण लोग सम्हालेंगे तो उनमें जिम्मेदारी आयेगी और बड़ों को सेवक की भावना से, नम्रतापूर्वक काम करने का अभ्यास होगा। इस प्रकार, संस्थाओं में एकाधिकार का जो आधिपत्य आ जाता है उसकी सम्भावना ही विनोबा ने मिटा कर बड़े लोगों की नयी पीढ़ी की ओर देखने की दृष्टि ही बदल डाली! इस प्रकार आश्रम में जीवनमूल्यों को प्रत्यक्ष आचरण में लाने की साधना चल रही थी। उसके प्रेरणास्रोत थे विनोबाजी। इसलिए लोग सहजता से इन्हें आचार्य ‘विनोबा’ कहने लगे।

## कर्मयोग के साथ ज्ञानोपासना

विनोबा को केवल देश का स्वराज्य ही नहीं चाहिए था। उन्हें तो ‘भवमुक्ति’ भी चाहिए थी। इसलिए ज्ञान, कर्म और भक्ति तीनों के एकरस से रसित जीवनयज्ञ ही उनका चल रहा था।

आश्रम के विविध प्रयोगों के लिए ‘देह’ थी, तो साधना के लिए मन, बुद्धि, चित्त और अन्तःकरण भी थे। यहाँ तो चित्तशुद्धि यही अध्यात्म था। सुबह से शाम की प्रार्थना तक, दशक घण्टे विनोबा मौन रहते। 1928 से 1931 के बीच के काल में, इस मौन के परिणामस्वरूप, विनोबा की ‘विचारपोथी’ लिखी गयी। 1930-31 के दरम्यान, गीताई की रचना हुई—जिसके बारे में विनोबा कहते थे कि—ईश्वर द्वारा मेरे हाथ से करायी यह उत्तमोत्तम मानवसेवा है।

विनोबाजी के चिन्तन-मनन का लाभ सभी को प्राप्त हो इस दृष्टि से जमनालाल के आग्रह से ‘महाराष्ट्र-धर्म’ नाम की मासिक पत्रिका 1923 में शुरू हुई। इस पत्रिका में छपे विनोबा के तीन लेख पर से तीन उत्तम पुस्तक प्राप्त हुई—‘मधुकर, उपनिषदों का अध्ययन और संतांचा प्रसाद’। गांधीजी ने कहा था—उपनिषदों के बारे में लिखे लेखों में तो विनोबा ने कमाल ही कर दी है।

1932 तक वर्धा में बारह वर्ष पूरे हुए। वह काल मौन साधना का, उग्र तपस्या का काल रहा।

## ग्रामोपासना और गोसेवा

1932 से दो-तीन साल तक ग्रामसेवा की दृष्टि से गाँव-गाँव घूमना चला। उस अनुभव के आधार पर 1934 में ग्राम सेवा मण्डल की स्थापना हुई और सारे वर्धा तालुका में ग्रामसेवा की योजना बनी। विनोबा की प्रेरणा से 1911 में बड़ौदा में विद्यार्थी-मण्डल की रचना हुई। 1934 में यह ग्राम-सेवा मण्डल और 1959 में ब्रह्म-विद्या-मन्दिर। वैसे तो सर्व सेवा संघ की स्थापना भी विनोबा की प्रेरणा से ही हुई।

आश्रम में दूध के लिए गोशाला चाहिए। इसलिए गोपालन जरूरी हो गया। गाय का दूध पीये बगैर गोसेवा का प्रयोग करने का प्रयत्न तीन-एक बार हुआ। एक बार दो साल तक, दूसरी बार तीन वर्ष तक और तीसरी बार दो वर्षों के लिए। कुल सात वर्ष प्रयोग किया गया। परन्तु उसमें सफलता नहीं मिली। दूध के बगैर, शरीर कमजोर पड़ जाता था।

गोसेवा के साथ तेलघानी और खादी जोड़कर सुरगँव में काम किया। उसके आधार से सूत्र बना—‘कपड़ा बनाओ—मक्खन खाओ।’

## कुष्ठ-सेवा

गरीब लोग, हरिजन, स्त्रियों की सेवा उपरान्त गोसेवा, भूमिसेवा तो विनोबा के हाथ से हुई ही, उस जमाने में सर्वथा उपेक्षित ऐसी कुष्ठसेवा के भी वे ही निमित्त बने। वर्धा में निवास शुरू होने के बाद, महाराष्ट्र के गाँवों में खादी-फेरी और समग्र सेवा के अन्य कार्यक्रम लेकर अनेक बार घूमना हुआ। तब ध्यान में आया कि गाँव-गाँव में कुष्ठ-रोगी फैले पड़े हैं और समाज उनके प्रति अत्यन्त निष्ठुर बन गया है। समाज की यह हृदयहीनता विनोबा से सहन न हुई और उन्होंने यह उपेक्षित काम हाथ में लिया।

हम सभी जानते हैं कि पुराने जमाने में किसी को कुष्ठ या रक्तपित का रोग होता था तो गाँव के लोग नगाड़े-बाजे बजाकर उस रोगी को नदी में फेंक देते थे। परदेश से अंग्रेज आये और उनके ईसाई मिशन ने कुष्ठरोग की सेवा का काम हाथ में लिया, तब भी लोकदृष्टि में तो ये कुष्ठरोगी अप्रिय ही बने रहे।

विनोबा के काम की खूबी यह थी कि उन्होंने अपने पास कुछ सेवकों की एक टोली निर्माण कर ली थी, जो विनोबा के इशारे पर अपने प्राणों की बाजी लगाने को तैयार हो जाया। मनोहर दीवान ऐसे ही एक उत्साही नवयुवक थे। विनोबा ने उनको कुष्ठसेवा के काम की प्रेरणा दी और उस निमित्त से भारत में 1936 में कुष्ठसेवा की प्रथम भारतीय संस्था स्थापित हुई। आज का दत्तपुर का कुष्ठ-सेवाधाम इस मनोहरजी की सेवा का फल है। गांधीजी ने लिखा है—‘सारे देश की इस एकमात्र कुष्ठ-सेवा-संस्था को विनोबा की प्रेरणा और मार्गदर्शन मिलता रहता है।’

बाद में पवनार के परंधाम आश्रम के प्रांगण में से खोदने पर जो खण्डित मूर्तियाँ मिलीं, उन्हें विनोबाजी ने मन्दिर के प्रमुख प्रांगण में प्रस्थापित की है। वे कहते हैं कि मुझे इन खण्डित मूर्तियों में कुष्ठधाम के रोगियों का दर्शन होता है। 1400 साल तक भूगर्भ में दबे रहने के कारण किसी मूर्ति की नाक घिस गयी है तो किसी का हाथ-पैर। विनोबा को इस सेवा के प्रति अप्रतिम आदर है।

## हरिजन-सेवा

‘कोई यदि चाहे कि यह मनुष्य हरिजनों को भूल गया तो मैं कहूँगा कि फिर तो हरिजनों को याद करनेवाला मुश्किल से ही कोई होगा। सर्वोदय में अन्त्योदय आ ही जाता है, परन्तु हरिजनों की अलग सेवा की जाय, यह मुझे कतई पसन्द नहीं है।’

फिर भी विनोबा की जनसेवा में महदंश अन्त्यजों की सेवा का ही रहा। उसमें भी भंगीकाम, चमारकाम और बुनाईकाम—ये तीनों काम हरिजनों के साथ एकरूप होने के लिए ही थे।

हरिजन-सेवा के काम का श्रीगणेश साबरमती आश्रम में हुआ। आरम्भ के दिनों में, आश्रम में संडास-सफाई के लिए भंगी रखे जाते थे। उनको कुछ माहवारी दी जाती थी। बाप बीमार पड़े तो बेटा आ कर सफाई कर जाता था। एक बार ऐसा ही हुआ। परन्तु बेटा छोटा था, उससे मलमूत्र की भरी बाल्टियाँ उठाकर खाद के गड्ढे में डालना सम्भव नहीं था। तो वह बेचारा रोने लगा। विनोबा के छोटे भाई बालकोबा का ध्यान उस ओर गया। उनको दया आ गयी और वे मदद में पहुँच गये।

फिर उन्होंने विनोबा से पूछा कि उन्हें भंगीकाम करना है, क्या आपकी सम्मति है? विनोबा ने केवल सम्मति ही नहीं, वे खुद भी उसकी मदद में जाने लगे। परन्तु ब्राह्मण के बेटे इस तरह मैला उठाये, यह कस्तूरबा से सहन नहीं हुआ। परन्तु बापू ने उनको समझा

दिया। यह हुई 1918 की बात।

1932 में जेल से छूट कर विनोबा वर्धा के पास नालवाड़ी गाँव में रहने लगे। वहाँ हरिजनों के 95 घर थे और पाँच अन्यों के। वहाँ ग्रामोद्योग खड़ा करने के लिए पशु को चीरने का काम सीखना जरूरी था। विनोबा ने दो ब्राह्मण युवकों को उस काम की तालीम दिलवाकर गाँव में चर्मालय शुरू करवाया।

1946 में पवनार में निवास था। परन्तु वहाँ से तीनेक मील की दूरी पर बसे सुरगाँव में विनोबा रोज सुबह कन्धे पर फावड़ा रखकर भंगीकाम के लिए जाते थे। आने-जाने में ही डेढ़-दो घण्टे लग जाते। यह उनका रोज का नियम था। उनका आदर्श सूर्यनारायण था। वे कहते—सूर्यनारायण सबसे बड़ा भंगी है। हम सब इतनी गन्दगी फैलाते हैं कि यदि 'भारत में इतना सूर्यप्रकाश मिलता न होता तो हम सारे कब के मर गये होते।

एक बार बारिश हुई। सारे रास्तों पर कमर तक का पानी फैल गया। बीच में एक नाला भी पड़ता था, जिसको बिना पार किये सुरगाँव जाना अशक्य ही था। उस दिन वहाँ तक पहुँच कर किनारे पर से, सामने-वाले किनारे पर खड़े किसी मनुष्य को जोर से चिल्लाकर कहा—'सुनिए, मन्दिर में जाकर भगवान से कह दीजिए कि गाँव का भंगी आज भी आया था, परन्तु नाला भरा होने से इस पार पहुँच नहीं सका।'

'जी, बता दूँगा।'

'क्या कहेंगे आप?'—बाबा ने पक्का कराते हुए पूछा। 'पुजारीजी को बता दूँगा कि बाबाजी पधारे थे।' 'नहीं भाई, ऐसा नहीं। भगवान से कहना है और यह कहना है कि गाँव का भंगी सफाई-काम करने आया था, परन्तु बाढ़ के कारण सामनेवाले किनारे पर पहुँच नहीं सका।'

इस प्रकार भंगीकाम विनोबा के लिए उपासनारूप था। उनको तो यह काम सूर्य के सातत्य से बीस वर्ष तक चलाना था, जिससे कि पूरी पीढ़ी बदल जाय और उनकी मूल में से मनोवृत्ति भी बदल जाय। परन्तु 1948 में गांधीजी गये और विनोबा को व्यापक क्षेत्र में बाहर आना पड़ा।

विनोबा का समग्र भूदानयज्ञ चला, उसमें 21 लाख एकड़ जमीन गरीब लोगों में बँटी, अधिकांश जमीन हरिजन भूमिहीन खेत-मजदूर को ही मिली। क्योंकि भूमिहीन खेत-मजदूर आमतौर पर हरिजन ही थे। दान में प्राप्त जमीन बाँटने की एक शर्त यह भी थी कि गाँव के सबसे अधिक गरीब खेत-मजदूर को वह भूदान दिया जाय।

इसके अलावा, देश के विभिन्न मन्दिरों में, जहाँ हरिजन-प्रवेश नहीं था, वहाँ जाति-धर्म-देश के आधार पर खड़े भेदभाव को निर्मूल करने हेतु विनोबाजी ने 'विश्व-मन्दिर' का कार्यक्रम दिया था। उसमें भी हरिजनों को ही न्याय देने की बात थी। परन्तु विनोबाजी को हरिजनों को अलग वर्ग में बाँटकर सेवा करना मंजूर नहीं था। वे कहते थे—'हरिजन-सेवा नहीं, हमें हरि-सेवा करनी है।' हरिजनों के लिए ही खास अलग छात्रालय बने या उनका अलग संघ बने यह बात उन्हें कतई पसन्द नहीं थी। वे चाहते थे कि हरिजन मुख्य प्रवाह में सम्मिलित हो जायें और उसी दृष्टि से हरिजनों का नाम लिये बगैर उनके उद्धार का कार्य किया। स्त्रियों की तरह हरिजनों को भी वे यही बात कहते थे कि—'आप में से कोई शंकराचार्य-जैसा वैराग्य-सम्पन्न, ज्ञाननिष्ठ, तपस्वी व्यक्ति पैदा होगा, तभी आपका उद्धार होगा।'

## जेल भी एक तीर्थधाम

1922 से 1945

आश्रमी जीवन तो मानो विनोबा का अपना असली जीवन था। वे कहते हैं—आश्रमों ने मेरा जीवन बनाया, आश्रम आत्मसात् हुआ। परन्तु स्वातंत्र्य-सैनिक के लिए आश्रमी जीवन तो एक पहलू मात्र था। सैनिक को तो मोर्चे पर जाने के लिए कभी भी बुलावा आ सकता है। सेनापति के हुक्म की ही देर होती है। स्वराज्य-आन्दोलन में 1923 से 1942 तक अनेक जेलयात्राएँ हुईं। विविध सत्याग्रह सामने आकर खड़े रहे। 1922 में नागपुर में झण्डा सत्याग्रह चल रहा था। सत्याग्रहियों के जुलूस पर पुलिस ने हमला मचा कर राष्ट्रीय झण्डे से ही उनको पीटा था, इसके विरोध में देशभक्तों ने विद्रोह का नारा जगाया था। एक के बाद एक सत्याग्रही पकड़े जाते थे। इस सत्याग्रह में 250 स्वयंसेवकों के साथ विनोबा ने भी सत्याग्रह किया और सरकार ने 109वीं धारा के मुताबिक उनको गिरफ्तार किया। यह धारा आवारा और गुण्डे लोगों को पकड़ने की धारा है। विनोबा-जैसे प्रखर चारित्र्यवान व्यक्ति को इस प्रकार की धारा के मातहत पकड़ा जाय, इसीको अंग्रेज सरकार की बलिहारी मानना चाहिए। उनको नागपुर की जेल में रखा गया। अपराध

की सजा काली मजदूरी थी। विनोबा को पत्थर तोड़ने का कठिन काम मिला। थोड़े अर्से के बाद उनको अकोला जेल में ले गये। वहाँ भी सवा मन अनाज चक्की पर पीसना अथवा निश्चित नाप के पत्थर तोड़ने का काम कैदियों को करना पड़ता। 1930-32 के पहले सत्याग्रहियों का जेलजीवन एक कठिन अग्निपरीक्षा ही थी। विनोबा का तो मानो तपोयज्ञ ही शुरू हो गया था।

### सरकस से उल्टा

एक बार बाल मित्र गोपालराव काले की पत्नी शान्ताबहन जेल में विनोबा से मिलने आयीं। उन्होंने पूछा- 'क्यों, जेल कैसी लगती है?' तब विनोबा ने लाक्षणिक जवाब दिया—'आपने सरकस देखा है न?' सरकस में मनुष्य पशु पर जुल्म करता है, इधर जेल में पशु मनुष्य पर जुल्म करता है।'

विनोबा कड़े अनुशासन में रहकर सब सजा झेल रहे थे, परन्तु साथियों से यह व्यवहार सहा नहीं गया। उन्होंने संगठित होकर विरोध किया। उसके प्रत्याघात जेल के बाहर भी उठे। राजाजी-जैसे अग्रणी नेता का 'यंग इण्डिया' में वर्णन आया—'और देखिए वे विनोबा! देवदूत-जैसी उनकी पवित्र आत्मा विद्वता, तत्त्वज्ञान और धर्म के ऊँचे शिखरों पर विहार करती है। इसके बावजूद इस आत्मा ने जो विनम्रता धारण कर रखा है, वह इतनी परिपूर्ण है और दिल की सच्चाई इतनी सहज है कि जो अधिकारी इन्हें नहीं पहचानता, उसे तो इनकी महानता का पता तक नहीं चलता। इनको जिस श्रेणी में रखा है, उस श्रेणी के लिए निश्चित की गयी मजदूरी के अनुसार ये बराबर पत्थर तोड़ते रहते हैं। अन्दाज ही नहीं होता कि यह मनुष्य चुपचाप कितनी शारीरिक यातनाएँ सहन कर रहा है।'

ऐसे छुपे रूस्तम थे विनोबाजी, गठरी में बाँधा रत्न! परन्तु उनको तो जेल में भी आनन्द ही था। कहते—सच्चा आश्रमी जीवन तो जेल का ही है। चन्द कपड़े, पानी का टम्लर और कांजी के लिए कटोरा। घण्टी के डंके पर उठना और सोना। बीमार पड़ने की भी छुट्टी नहीं। भोजन में तो अस्वाद-व्रत था ही। अकोला जेल से छूट कर वर्धा आश्रम पहुँचे कि तुरन्त आश्रमी साधना शुरू हुई। एक साथी ने कहा—'अकोला जेल से तबादला होकर फिर आश्रम-जेल में पहुँच गये।'

### हरिजनों के लिए सत्याग्रह

इस प्रकार आश्रम और जेल का जीवन एकाकार था। झण्डा-सत्याग्रह पूरा हुआ, तुरन्त वायकोम-सत्याग्रह का डंका बजा। बापू का सन्देश आया कि दक्षिण भारत के केरल प्रदेश में वायकोम गाँव के महादेवजी के मन्दिर में हरिजनों को दाखिल नहीं होने देते थे, इसके विरोध में चल रहे सत्याग्रह में विनोबा पहुँच जायँ। दक्षिण में विद्वान् सनातनियों के साथ चर्चा करनी पड़े, उसमें विनोबा-जैसा दूसरा पण्डित कौन मिले?

इसी वायकोम गाँव के पास ही जगतगुरु शंकराचार्य का जन्मस्थान है—कालडी। शंकराचार्य तो विनोबा की आद्य प्रेरणामूर्ति थे। वहाँ जाने की उनकी वर्षों पुरानी इच्छा थी। परन्तु इस बार तो सत्याग्रह के लिए वायकोम जाना था। कर्तव्य-भंग तो नहीं किया जा सकता। रातभर नींद नहीं आयी। शंकराचार्य के प्रखर ज्ञान-वैराग्य का मन ही मन चिन्तन-मनन करते रहे। आखिर 1957 में भूदानयात्रा के सिलसिले में जब कालडी जाना हुआ, तब अन्तर की इच्छा परिपूर्ण हुई। परन्तु उस वक्त तो स्वधर्म को ही परमधर्म माना।

पण्डितों के साथ खूब तत्त्व-चर्चा हुई। सारा वादविवाद संस्कृत में ही चला। मन्दिर से गुजरते हुए रास्ते पर भी हरिजन चल न सके। ऐसे अन्याय को सरकार ने भी चलने दिया, तब चन्द साथियों के साथ विनोबा ने सत्याग्रह किया। मारपीट भी हुई, फिर भी सत्याग्रहियों की टोली छह-छह घाटों तक शान्तिपूर्वक पुलिस के सामने खड़ी रहती। सोलह महीनों तक यह सत्याग्रह चला। गांधीजी भी वहाँ आ गये। आखिर 1925 के अप्रैल माह में सरकार ने हरिजनों पर जो रास्ते का बन्धन था वह हटा लिया और सत्याग्रह सफल हुआ।

### नमक-सत्याग्रह धुलिया जेल में

भारत देश की आजादी की लड़ाई में 1930 का नमक-सत्याग्रह जगप्रसिद्ध हो गया है। 12 मार्च को प्रारम्भ हुई बापू की ऐतिहासिक दाण्डी-यात्रा से समूचे देश में ऐसी चेतना जाग उठी कि उस स्पर्श से सारा विश्व हिल उठा और अंग्रेज सल्तनत ने निःशस्त्र स्वराज्य सैनिकों पर जो अत्याचार ढाये, उससे तो अंग्रेज सरकार के सिर पर हमेशा के लिए एक काला कलंक लग गया।

दुनियाभर में डंका बज रहा हो, तब विनोबा थोड़े ही चुप बैठे रहेंगे। सभा-सम्मेलनों को बुलाकर विदेशी माल का बहिष्कार और 'स्वदेशी अपनाओ' का सूत्र बुलन्द किया। जलगाँव में उनकी जाहिर सभा चल रही थी, तभी पुलिस ने उनको गिरफ्तार किया

और वहाँ से उनको धुलिया जेल में ले गये।

1932 की इस जेल में विनोबा की श्रेणी बदली। 'क' में से अब 'ब' वर्ग मिला था, परन्तु अन्य साथी 'क' वर्ग में रहें, यह भेदभाव विनोबा कहाँ सहन करनेवाले थे। तीन सौ आन्दोलनकारी कैदी थे। विनोबा उन्हींके साथ 'क' वर्ग में रहने लगे।

### जेल का आश्रम में रूपान्तर

पारसमणि तो जहाँ जायगा, वहाँ अपना रूप प्रकट करेगा ही। विनोबा का व्यायाम फिर शुरू हुआ। जेल को आश्रम में बदलने का। उस वक्त हर एक को 31 रतल अनाज रोज पीसना पड़ता था। विनोबा ने 21 रतल कराया और जेलर के साथ यह भी तय करा लिया कि सब लोग साथ में मिलकर कुल अनाज पीस लेंगे, यद्यपि वे खुद तो रोज का २१ रतल पीस ही लेते थे। फिर तो धीरे-धीरे रसोड़ा भी उन्होंने ही हाथ में ले लिया। सामान्य कैदीगण भी इस रसोड़े में स्वादिष्ट भोजन करते।

### 'गीता-प्रवचन' की जन्मभूमि

धुलिया जेल में बहुत सारे बड़े-बड़े नेतागणों का मेला लगा था। प्यारेलालजी, जमनालालजी, गुलजारीलाल नन्दा, खण्डुभाई देसाई, रिषभदास रांका, आप्टे गुरुजी, साने गुरुजी-जैसे अनेक सज्जनों का पवित्र तीर्थ-संगम वहाँ अनायास खड़ा हो गया था। इन सबका आग्रह हुआ कि हर रविवार को विनोबाजी गीता पर प्रवचन दें।

मानो एक चमत्कार हुआ। भारतभर की तमाम और दुनियाभर की अन्य भाषाओं में अनूदित होकर जो वाणी विश्वभर में बही, उसकी जन्मभूमि, गंगोत्री बनने का सौभाग्य इस धुलिया जेल को मिला। 18 हफ्तों तक यह वाक्-यज्ञ चला और साने गुरुजी के पुण्य प्रताप से विनोबा की कही वाणी उनकी रोजनीशी में लिखी गयी। तब तो कैसेट-युग था नहीं। साने गुरुजी की ली हुई सामग्री को विनोबा तथा शिवाजी भावे देख गये। कुछ सुधारादि किये और फिर वह पुस्तकाकार रूप में आया, हम सब का प्यारा 'गीता-प्रवचन' जो लाखों की संख्या में घर-घर पहुँच गया है।

### कथाकार से जीनेवाला आगे

एक सुन्दर घटना जानने-जैसी है। इंग्लैण्ड की एक गुजराती बहन के पास यह पुस्तक पहुँच गयी। उन्हें बहुत पसन्द आयी। परन्तु फिर उस सरस्वतीबहन के मन में प्रश्न उठा कि लिखनेवाले ने तो पुस्तक सुन्दर लिख ही डाली है, परन्तु वे जीते हैं कैसे? हाथी के दाँत-जैसी हालत तो नहीं होगी न! यही जिज्ञासा सरस्वतीबहन को भारत खींच लायी।

तब विनोबा की भूदान-पदयात्रा बिहार में चल रही थी। सरस्वतीबहन कुछ दिन पदयात्रा में रह कर प्रवचनकार का साक्षात् जीवन प्रत्यक्ष में देखा। यात्रा से लौटते समय उनके मुँह से उद्गार निकले—'मैंने पाया कि गीता पर प्रवचन करनेवाले विनोबा से यह विनोबा बहुत आगे निकल चुके हैं।'

'माँ का दूध बचपन में पीने को मिला, और उसने मेरे शरीर को पोषण दिया, परन्तु गीतामाता ने तो मेरे मन-बुद्धि का जीवनभर पोषण किया।' गीतामाता का यह लाडला बेटा था। इसीलिए तो उन्हें वासना जगी कि 'गीता-प्रवचन' घर-घर पहुँचे। सालों तक वे केवल इसी पुस्तक पर 'नित्य पठनीय' का सन्देश देकर अपने हस्ताक्षर दिया करते थे।

जेल की स्त्री-कैदियों को भी ये प्रवचन सुनने की जिज्ञासा जगी। जेल में स्त्री-कैदी पुरुष-कैदी के पास जा नहीं सकती। परन्तु जेलर श्री वैष्णव ने रास्ता निकाला। विनोबा की गिनती पुरुष में थोड़े ही करनी थी। उनको तो स्त्रियों में से ही एक मानने में कोई हर्ज नहीं। इसीलिए स्त्रियों की बैरक में उनके प्रवचन का इंतजाम कर दिया।

धन्य वह ब्रज और धन्य वह वृन्दावन की तरह 'धन्य वे वैष्णवजन और धन्य वह धुलिया जेला।' ऐसा गाने का मन हो जाय, ऐसी यह दुर्लभ घटना!

इसी धुलिया जेल में 'गीताई' भी छप कर आयी। एक आना कीमता कैदियों ने जेलर के पास जाकर कहा—'हमारी मजदूरी में से दो आने दीजिए। हमें गीताई खरीदनी है।'

'परन्तु उसकी कीमत तो एक ही आना है।' 'हमें मालूम है, परन्तु हमें एक आना विनोबा को दक्षिणा में देना है।' ऐसा वे कह रहे थे जिन्हें चोर, डाकू और गुनहगार अपराधी मानते हैं।

जेलरसाहब वैष्णव तो विनोबा के भक्त ही बन गये थे। 1958 में पदयात्रा के सिलसिले में फिर से धुलिया जाना हुआ। तब

उनके घर विनोबा को ले गये, तब हमने देखा कि उनके बैठक-खण्ड में दिवार पर जो एकमात्र तस्वीर टँगी थी वह थी—विनोबा की।

## विनोबा को भी दुख

शिवनी जेल में कैदियों को अपने रिश्तेदारों को खत लिखने की इजाजत थी, परन्तु विनोबा को तो ऐसे भेदभाव मंजूर ही कैसे होता? इसीलिए उनको पत्रादि कुछ लिखना ही नहीं था। तीन साल तक उन्होंने कभी किसी को चिट्ठी-पत्र कुछ भी नहीं लिखा, फिर भी वे निजानन्द में मस्त थे। जेलरसाहब देखते रहते थे। एक दिन उनसे रहा नहीं गया। पूछ ही लिया—'बाबा, आपके जीवन में हर्ष-ग्लानि, सुख-दुख कुछ भी नहीं है क्या?' तब विनोबा ने कहा, 'नहीं भाई, ऐसा तो नहीं है। मुझे भी सुख-दुख तो होते ही हैं। चलिए, मैं आपको सात दिन देता हूँ, इसमें आप दूँद निकालिये कि मेरा दुख कौन-सा है।'

जेलर ने सात दिन तक सूक्ष्म निरीक्षण किया, परन्तु कुछ हाथ नहीं आया। आखिर कहा—'मुझे तो कुछ भी मालूम नहीं हुआ। अब आप ही बताइये।'

तब विनोबा ने कहा—'जेल में रोज सुबह-शाम सूरज का दर्शन नहीं होता है। मेरे मन पर इसका भारी दुख है।'

बहुत सारे लोग उनसे पूछते हैं कि आपको केवल हजार, बारह सौ केलरी में पूरा भोजन कैसे हो जाता है? तब वे हँसते-हँसते कहते थे—'अरे भैया! मैं केवल दूध थोड़े ही पीता हूँ। उन हजार केलरी के अलावा, रोज गीता के 18 अध्याय और यह चारों ओर फैला आकाश जो खाता हूँ—'उसका क्या?'

चहारदिवारी के भीतर पूरा दिन बिताना पड़े, यह उनके लिए मानसिक दुख जैसा था। व्यापक और निर्बन्ध-चिन्तन करना हो तो गुफा से खुले आसमान के नीचे अच्छा हो सकता है।

## प्रथम सत्याग्रही

विधि के विधान कुछ अलग ही थे। विनोबा पालथी लगाकर कहीं बैठ जायें, यह उन्हें मंजूर नहीं था।

1938-39 के दिन थे। दूसरा विश्वयुद्ध हो चुका था। ब्रिटेन के लिए तो वह अपने घर-आँगन की ही लड़ाई थी। भारत उसीका गुलाम देश, इसलिए उसने भारत को भी युद्ध में घसीटना चाहा। यह देखकर बापू का पुण्य-प्रकोप प्रज्वलित हो उठा। सरकार के सामने युद्ध-विरोध जाहिर किये और युद्ध के प्रयासों के साथ असहकार का एलान किया। परन्तु सरकार ने इस विरोध को ठुकरा दिया, इसलिए फिर 'सत्याग्रह' यही एकमात्र उपाय बाकी रहा।

बापू की योजना में इस बार 'व्यक्तिगत सत्याग्रह' की बात थी। रचनात्मक कार्य में जिसका पूर्ण विश्वास हो, निष्ठावान और सच्चरित्र व्यक्ति को ही बापू खुद चुननेवाले थे। चारों ओर चर्चा चली कि प्रथम सत्याग्रही कौन बनेगा? स्वाभाविक है कि जवाहरलाल, सरदार पटेल, राजेन्द्रबाबू—जैसे नेताओं के नाम लोकजबान पर थे। उतने में एक दिन विनोबा को वर्धा से बापू का बुलावा आया। कहने लगे—'प्रथम सत्याग्रही के तौर पर तुम तैयार रहो। हाथ के काम निपटाने में कितना समय चाहिए?'

'आप का बुलावा और यमराज का बुलावा मेरे लिए एक-सा है। मुझे यहाँ से पवनार जाने की भी जरूरत नहीं है।'

इस तरह 1940 में 11 अक्तूबर को विनोबा का प्रथम सत्याग्रही के तौर पर वरण हुआ। लोग तो दंग रह गये। 'कौन है यह विनोबा?' प्रश्नों की वर्षा हुई और बापू तथा महादेवभाई ने उनके बारे में ऐसे सुन्दर परिचयात्मक लेख लिखे जिसमें विनोबा का भीतर का सच्चा सत्व प्रकट हो उठा था।

वैसे उन्हें तो प्रसिद्धि की चाह ही कहाँ थी? फिर भी उस समय एक ही रात में विनोबा सारे भारत में प्रसिद्ध हो गये। महादेवभाई ने उनकी विशेषता इंगित करते हुए लिखा— 'वे नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं। ऐसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी शायद और भी होंगे। वे प्रखर विद्वान् हैं। ऐसे प्रखर विद्वान् दूसरे भी हैं। उन्होंने सादगी का वरण किया है। उनसे भी अधिक सादगी से रहनेवाले गांधीजी के अनुयायियों में कुछ लोग हैं। वे रचनात्मक कार्य के पुरस्कर्ता तथा रातदिन उसीमें निमग्न व्यक्ति हैं। वैसे भी कुछ लोग गांधीजी के अनुयायियों में हैं। उनके-जैसी तेजस्वी बुद्धिशक्तिवाले भी कुछ हैं। परन्तु इनमें कुछ चीजें ऐसी हैं, जो दूसरों में नहीं हैं। कोई निश्चय किया, कोई सिद्धान्त ग्रहण किया तो उसका उसी क्षण से अमल करना, यह उनका प्रथम पंक्ति का गुण है। उनका दूसरा गुण उनकी निरन्तर विकास-शीलता है। हममें से मुश्किल से कोई कह सकेगा कि मैं प्रतिक्षण विकास कर रहा हूँ। गांधीजी के उपरान्त यदि यह गुण मैंने और किसी में देखा हो तो यह विनोबा में देखा है। ऐसे गुणों के कारण, 46 साल की उम्र में उन्होंने अरबी-जैसी कठिन भाषा का अभ्यास किया। कुरान शरीफ पढ़ने लगे और उसके हाफिज-जैसे हो गये।'

योजना अनुसार विनोबा ने युद्धविरोधी भाषण देने के लिए गाँव-गाँव घूमना शुरू किया। 21वीं तारीख को सुबह तीन बजे विनोबा की गिरफ्तारी हुई और गांधीजी ने दूसरे सत्याग्रही के तौर पर जवाहरलाल का नाम जाहिर किया। तीन-तीन बार विनोबा छूटे और फिर-फिर पकड़े गये। आखिर सरकार ने एक साल की सजा जाहिर की।

विनोबा के लिए तो जेलवास उपकारक ही सिद्ध हुआ है। इस बार मराठी सन्तों के भजनों का चयन 'संतांचे प्रसाद' तैयार हुआ और 'मंगल प्रभात' का 'अभंग व्रतों' के नाम से अभंग के स्वरूप में मराठी पद्यानुवाद भी तैयार हुआ।

मार्क्स का साहित्य पढ़ा। मित्रों के आग्रह से 'स्वराज्य शास्त्र' जैसी राजनीति पर महत्त्व की शास्त्रीय पुस्तक लिखी गयी। जिसमें वेदकथित दो मंत्रों के आधार पर—'न त्वहं कामये राज्यम्' और 'यतेमहि स्वराज्ये'—'स्वराज्य' को ही परिभाषित करती गहन चर्चा है।

### वेलूर जेल में

फिर से 1942 में 'भारत-छोड़ो-आन्दोलन' में नौवीं अगस्त को जेल जाना हुआ। प्रथम तो नागपुर जेल में ले गये, फिर किसी को मालूम नहीं, इस ढंग से तमिलनाडु की वेलूर जेल में ले गये। राजनीतिक कैदी थे। इसीलिए जेलर ने तुरन्त पूछा कि आप अपनी आवश्यकताएँ बता दीजिए, ताकि मैं इंतजाम कर सकूँ।

विनोबा ने कहा—'महीनों से जटा-दाड़ी-मूँछ की हजामत नहीं हुई, एक तो उसकी सफाई हेतु हजाम चाहिए। और दूसरा चाहिए एक शिक्षक, जो मुझे तमिल भाषा सीखा सके। जिस प्रान्त का अन्न मेरे पेट में जाता हो, उस प्रान्त की भाषा मैं सीख लेता हूँ।'

शिक्षक तो जैसा-तैसा मिला। पूरा अंग्रेजी-हिन्दी भी नहीं जानता था। जैसे-तैसे गाड़ी चलायी और पन्द्रह दिनों में तमिल भाषा सीख ली। जेल में दूसरे कैदियों में से, कन्नड, तेलगु और मलयालम भाषा सीख ली। केवल भाषा नहीं चार अलग-अलग लिपियाँ भी सीख लीं। इस जेलवास में शास्त्रशुद्ध और मुद्रणयंत्रों को अधिक अनुकूल पड़े ऐसी लोकनागरी लिपि भी तैयार की।

वेलूर में भी गीता पर प्रवचन हुए, जिसका मादा 'गीता-वल्लरी' रूप में प्राप्य रहा। परन्तु विनोबा ने कह दिया कि गीता पर मुझे जो कुछ कहना था वह धुलियावाले 'गीता-प्रवचन' में आ जाता है, इसलिए इसे छापने की जरूरत नहीं। फिर भी 'गीता-वल्लरी' की कुछ विशेष बातों को विनोबा-साहित्य-सम्पुट में तीसरे खण्ड में समाहित कर दिया गया है।

वेलूर से उनको मध्यप्रदेश की शिवनी जेल में ले गये। इस जेलयात्रा की प्रसादी के तौर पर प्राप्त हुआ— स्थितप्रज्ञ दर्शन स्थितप्रज्ञ के लक्षणों का अत्यन्त सरल भाषा में विशद विवरण।

ईशोपनिषद् पर 'ईशावास्यवृत्ति' पुस्तक भी यहीं लिखी गयी। 1945 की नौवीं जुलाई को जेल से छूटे।

### पवनार के परधाम में (1938 से 1950)

1933 में सत्याग्रह आश्रम का विसर्जन करके गांधीजी वर्धा में आ गये, और 1936 से तो सेवाग्राम आश्रम में उनका स्थायी निवास शुरू हो गया। बापू स्वयं रहने आ गये, फिर तो पूछना ही क्या था? वर्धा मानो देश का हृदय ही बन गया। अनेकविध प्रवृत्तियों की सदाबहार और विविध संस्थाओं का तो मानो ताँता ही लग गया। इसके बीच विनोबा की कर्म-ज्ञान-भक्ति की वही त्रिवेणी बहती ही रहती थी। परन्तु भिन्न-भिन्न प्रयोग करने में शरीर की ओर ध्यान कम दे सके। वैसे ही मूलभूत पिण्ड कमजोर था, उसमें भी स्वैच्छिक गरीबी और सादगी के अनेकानेक प्रयोग चले, उस कारण धीरे-धीरे शरीर कमजोर पड़ता चला गया। 1938 की बात है। 'प्रभु के पास पहुँचने की पल आ रही है।'—इस विचार से विनोबा तो प्रसन्न ही थे, परन्तु दूसरे लोग यह बात कैसे सहन कर पाते? बात बापू के पास पहुँची और बुलावा आया।

"मेरे पास आ जाओ! मैं चाकरी करूँगा।"— बापू ने कहा।

"आपके पास पचासों काम, उसमें एक काम मेरी चिकित्सा का, उसमें भी पचासों रोगी, उनमें से एक मैं! इससे क्या होगा?"

"तो फिर डॉक्टर के पास जाओ।"

"उससे तो अच्छा, यमराज के पास जाना।"—विनोबा ने कहा।

"तो फिर हवा खाने के स्थान पर जाओ। मसूरी, पंचगनी, हिमालय, जहाँ भी जाना हो।"—बापू ने कहा।

"ठीक है, मैं पवनार में जमनालालजी का जो खाली लाल बंगला है, वहीं जाकर रहूँगा।"

"अच्छी बात, परन्तु वहाँ रहते हुए सारा चिन्तन बन्द कर देना पड़ेगा। आश्रम, कार्य या अन्य किसी भी विषय के विचार नहीं करना है।"—बापू ने आदेश दे दिया।

पैदल नहीं जा सकते थे, इसलिए मोटर में पहुँचे। दस महीनों तक बिलकुल निर्विचार भूमिका का अनुभव लिया। काम तो बन्द ही था। परिणामस्वरूप वजन 88 से 128 रतल तक बढ़ा। तबीयत भी चंगी हो गयी और अब कायमी निवास भी वर्धा के स्थान पर 'परंधाम' हो गया। धाम नदी के उस पार बसा धाम, इसलिए 'परंधाम'। शब्द के तो वे सम्राट थे न!

### सच्चा अर्थशास्त्र

सेहत धीरे-धीरे सुधरती गयी और फिर पवनार गाँव का सम्पर्क भी क्रमशः बढ़ता गया। गाँव में एक परिश्रमालय शुरू किया, जिसमें लोग चर्खा चलाने आते। परंधाम आश्रम में एक छप्पर बाँध कर बुनाई-काम शुरू किया।

एक बार बाजार में कम्बल खरीदने गये। बेचनेवाली बाई ने एक कम्बल का डेढ़ रुपया बताया। विनोबा ने उसके मूल दाम के बारे में जानने की कोशिश की तो पाँच रुपये से कम में तो वह बन ही नहीं सकता था।

'तो फिर तुम डेढ़ रुपये में क्यों बेच रही हो?'

'तो फिर मैं क्या करूँ? डेढ़ कहती हूँ, तो लोग सवा रुपये में माँगते हैं। पाँच रुपये मुझे कौन देगा?'

विनोबा ने पाँच रुपये देकर कम्बल खरीद लिया। वह स्त्री देखती ही रह गयी कि यह कलियुग है या सतयुग।

फिर परिश्रमालय के युवकों को सारा किस्सा सुनाकर समझाया कि तुम लोग बाजार भाव बढ़ाना सीखो। तो गरीबों के पास कुछ पहुँचेगा। फिर तो बारिश के दिनों में घास का पूड़ा बेचनेवाली स्त्रियों से ये लड़के दो या तीन पैसे के बदले, दो आने देकर और घास खरीद कर दाम बढ़ा देते। ऐसा था—विनोबा का अर्थशास्त्र का शिक्षण। सार्थक करे वैसा अर्थशास्त्र! अनर्थ करे ऐसा नहीं!

### भरत-राम-मन्दिर

ब्रह्म विद्या मन्दिर के प्रांगण में प्रवेश पाते ही एक छोटा-सा सुन्दर मन्दिर आता है। आश्रम के सामने ही बहती धाम नदी और बीच की एक छोटी-सी सड़क से गुजरे तो सामने खड़ा है यह भरत-राम-मन्दिर। समूचा दृश्य दर्शक का मन मुग्ध कर लेता है।

इस मन्दिर की मूर्ति की भी एक कहानी है। सामान्य तौर पर तो गांधी-विचार से चलनेवाले आश्रमों में तकली, चर्खा, कुदाल-फावड़ा ही मूर्तिरूप में पाया जाता है। तो फिर यहाँ ये भरत-रामजी कैसे प्रस्थापित हो गये?

साथियों के साथ यहाँ रहने आये, तब आरम्भ में खेती आदि काम चला। खेती करनी हो तो कुआँ भी चाहिए। वह खोदते-खोदते, एक बार खुद विनोबाजी की कुदाल किसी पत्थर से टकरायी। धीरे-धीरे खोद कर पूरी शिला बाहर निकाल कर देखा तो उसमें तो एक सुन्दर घटना रेखांकित हुई थी। चौदह वर्ष के वनवास के बाद, भरत-रामजी मिल रहे हैं। एक तरफ सीतामाई हैं, दूसरी ओर लखन भैया। 1932 में धुलिया जेल में विनोबा ने जो गीता प्रवचन दिये थे, उसमें बारहवें अध्याय में सगुण-निर्गुण भक्ति की बात समझाते हुए बाबा ने भरत-राम-मिलाप की झाँकी के दृश्य का विवरण शब्दों में किया था।

विनोबा कहते हैं—'मेरे लिए मुझे मूर्ति अनिवार्य नहीं लगती। परन्तु साक्षात् प्रभु मूर्ति बनकर मेरे सन्मुख आकर खड़े रह जायँ तब मैं ऐसा पत्थर भी नहीं हूँ कि उस मूर्ति की अवमानना करूँ।'

इस प्रकार भरत-रामजी आश्रम के हृदय-सिंहासन पर बैठ गये हैं। बजाज-परिवार ने उस पर सुन्दर सफेद संगमरमर का देवालय बना दिया है। शान्त-स्वच्छ-शीतल स्थान अन्तर में अपार शान्ति प्रदान करता है।

पवनार आश्रम का एक लड़का। मेहनती और साफ दिल का। परन्तु बेचारे को बीड़ी की लत लग गयी थी। वह छिप कर बीड़ी पी लेता। एक बार किसी आश्रमवासी ने देख लिया। वह लड़का तो बेचारा घबड़ा गया। एक तो बीड़ी पी, सो भी आश्रम में और छिप-छिप कर! विनोबा के पास जाकर उसने अपना अपराध कबूल ही कर लिया।

विनोबा ने कहा—'बेटा घबड़ाना नहीं। बड़े-बड़े लोग भी बीड़ी पीते हैं। परन्तु अब मैं तुझे एक अलग कोठरी बताता हूँ और बीड़ी का एक बंडल ला देता हूँ। जब कभी बीड़ी पीने की इच्छा हो, वहाँ जाकर पी लेना।'

दूसरे साथियों को तो यह बात बड़ी विचित्र-सी लगी। न कोई उलाहना, न परहेज। ऊपर से बीड़ी पीते रहने की व्यवस्था। विनोबा ने सबको समझाया—'उसकी बुरी आदत को छोड़ने का समय तो देना ही चाहिए न! अहिंसा में, मन में उदारता और सहानुभूति भरा रुख रखना ही पड़ता है। हाँ, इससे दूसरे किसी का नुकसान न हो, और भोग-विलास न बढ़े उतना आग्रह हम जरूर रखें।'

बाद में तो उस लड़के ने भी बीड़ी पीना छोड़ दिया। परन्तु आश्रम के खर्च-बही में आज भी वह बीड़ी का बण्डल खर्च-खाते में लिखा मिलेगा।

अध्ययन और अध्यापन—दोनों विनोबा के प्रिय विषय। इसीलिए तो कहते हैं कि 'कोई मुझे यदि पूछे कि आपका व्यवसाय कौन-सा? तो मैं कहूँगा, शिक्षक का! और मैं शिक्षक बन सका हूँ क्योंकि मैं निरन्तर विद्यार्थी रहता हूँ, इस अध्ययन-अध्यापन का इतिहास भी रोचक है।'

वे खुद कहते हैं—'1901 में गागोदा में मेरी पढ़ाई शुरू हुई, तो वह 1916 तक बड़ौदा में चली। उस बीच अक्षरशः मैंने हजारों किताबें पढ़ीं। मराठी, संस्कृत, हिन्दी, गुजराती, अंग्रेजी, फ्रेंच, इन छह भाषाओं के उत्तम ग्रन्थ मैंने पढ़ लिये। हिन्दी में तुलसी-रामायण, गुजराती में नरसिंह-मेहता, अखो भगत आदि, फ्रेंच में विक्टर ह्यूगो का 'ला मिजरेबल', अंग्रेजी में मिल्टन, वर्ड्सवर्थ, ब्राउनिंग जैसे कवि। संस्कृत कम आती थी इसलिए गीता पढ़ी, परन्तु मराठी में तो ज्ञानदेव, नामदेव, तुकाराम, एकनाथ, रामदास—हजारों ओवियाँ और अभंग मुझे याद रह गये। यह थी मेरी पहली अवस्था।

फिर 1918 से 1969 तक मेरा वेदाभ्यास चला। इन पचास वर्षों में, वेद-वेदान्त, रामायण, महाभारत, भागवत, योगवाशिष्ठ, योगसूत्र, ब्रह्मसूत्र, सांख्यसूत्र, रघुवंश—जैसे ग्रन्थ पढ़ लिये। 33 भाष्य पढ़े। यह हुई मेरी दूसरी अवस्था।

अब आता है—1975 का वर्ष। 81 साल की उम्र हुई तो वृद्धावस्था के आश्रय के लिए दो ग्रन्थ रखे—एक गीता, दूसरा विष्णुसहस्रनाम।

जीवन की प्रथम अवस्था में पाँच सन्तों का असर, दूसरी अवस्था में वेद का मुख्य असर, तीसरी अवस्था में सर्वाधिक विष्णुसहस्रनाम का असर।

यह सारा हिन्दू धर्म का नवनीत। इसके अलावा विविध धर्मों के प्रमुख ग्रन्थों को भी इतना आत्मसात् किया कि सर्वमान्य ऐसा विविध धर्म-सार निकाल कर सर्वधर्म-समन्वय का बहुत बड़ा कार्य सम्पन्न किया। तदुपरान्त, भारत देश की तमाम विविध भाषा का सर्वोत्तम साहित्य पढ़ लिया। करीबन 50,000 पद्य उन्हें कण्ठस्थ थे। अलावा, प्राचीन अरबी, फारसी, अर्ध-मागधी, पाली भाषा भी सीख ली। चीनी-जापानी तो सीखे ही थे, एक जर्मन युवती से जर्मनी भी सीख लिया। एस्पेरंटो भी सीख ली।

नवल-कथा पढ़ना पसन्द नहीं था। एक बार जेल में काकासाहब कालेलकर के साथ चर्चा चली, तब विनोबा ने कहा—'मुझे तो यह समझ में ही नहीं आता कि इतिहास का इतना प्रचुर साहित्य पड़ा है, उसे छोड़कर लोग नवल-कथा क्यों पढ़ते होंगे? हमें जो जीवन-परिचय चाहिए वह इतिहास में मिल सकता है।' तब काकासाहब ने कहा—'इतिहास का महत्त्व मैं भी समझता हूँ, परन्तु इतिहास तो जीवन का केवल अस्थि पिंजर ही प्रस्तुत करता है और उसमें भी राजा-महाराजाओं के सारे करतूतों की ही कथा भरी रहती है। उसमें जनजीवन की तो उपेक्षा होती ही है। नवल-कथाओं में भले स्त्री-पुरुष-सम्बन्ध के बारे में बातें होती हैं, फिर भी राष्ट्र-जीवन की मांसलता तो इसीमें पायी जाती है। इतिहास में हड्डियाँ और नवल-कथाओं में मांस—इस तरह दोनों को मिलाकर पूरा शरीर मिलता है।'

और फिर काका ने बाबा को रवीन्द्रनाथ टैगोर की 'गोरा' नवल-कथा पढ़ने हेतु दी। बंगाली सीखकर वे उसे पढ़ गये, फिर बोले—'इस प्रकार की नवल-कथा पढ़ने को मिले, फिर इतिहास पढ़ने की जरूरत ही कहाँ रहती है?'

जेल में दोनों एक ही कोठरी में रखे गये थे। अच्छी जोड़ी जमी थी। दोनों विद्वान् गहन तत्त्वचर्चाएँ चलतीं। विनोबा कहते—'काकासाहब के कारण मेरी बहुत सारी मेहनत टल जाती है। वे जो कुछ पढ़ते, उसमें महत्त्व की बातों के नीचे रेखांकन करते, बस, मुझे तो वह रेखांकित सामग्री ही पढ़नी होती थी।' कितना विश्वास!

वैसे तो उम्र में काकासाहब विनोबा से दस साल बड़े थे। परन्तु आश्रम में विनोबा पहले पहुँचे थे। इसलिए कभी चर्चा चलती कि इन दोनों में सीनियर-जूनियर कौन? तब काकासाहब ने कहा—'गांधीजी को गये आज दस वर्ष हो गये। (1958 में) आज मैं कह सकता हूँ कि गांधी-कार्य के प्रचार और विस्तार में हम सबमें विनोबा सीनियर मोस्ट हैं।' इससे बढ़िया सुन्दर पुरस्कार दूसरा कौन-सा हो सकता है?

इतिहास का चक्र एक सरीखी गति से चला जा रहा था। 1942 में 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के बाद, अंग्रेजों की 'दो बिल्ली, एक बन्दर' की साजिश सफल होने से आखिर भारत में हिन्दू-मुस्लिमों के बीच भयंकर दंगे फूट निकले और अन्त में जिन्ना की अलग पाकिस्तान की माँग का स्वीकार करना पड़ा। गांधीजी के लिए तो जैसे आसमान टूट पड़ा जैसी पीड़ाकारी घटना थी। 1947 में स्वराज्य आया, देश का विभाजन होने के बाद गांधीजी तो देशभर में फैली वैर की आग को बुझाने की कोशिश में सरहदों पर ही घूम रहे थे। आखिर, उसीमें उनका बलिदान लिया गया और सारा भारत मानो अनाथ-सा बन गया।

## सर्वोदय-समाज की स्थापना

बापू के साथ रहे लोगों की नजर अब विनोबा की ओर थी। भारतभर के गांधीजन 1948 में सेवाग्राम में मिले। सबने साथ में मिलकर 'सर्वोदय समाज' और 'सर्व सेवा संघ' की स्थापना की और साल में एक बार प्रतिवर्ष 'सर्वोदय सम्मेलन' आयोजित करने का तय किया। इसके अलावा, हर वर्ष 12 फरवरी को देश के विभिन्न स्थानों में जगह-जगह 'सर्वोदय मेला' का आयोजन करके सूतांजलि-समर्पण का कार्यक्रम गांधी-तर्पण के तौर पर निश्चित हुआ।

उस वक्त दिल्ली में शरणार्थियों की लम्बी कतारों को पुनः स्थापित करने का काम चल रहा था। तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री नेहरू को इस कार्य में मदद रूप होने के लिए विनोबा ने 'शान्ति-यात्रा' निकाली। परन्तु संवेदनशून्य बनी नौकरशाही के राज्य में इससे ज्यादा कुछ निकलेगा नहीं, ऐसे नतीजे पर आकर विनोबा फिर पवनार आ गये।

पवनार के इस प्रयोगी बाबा का 'कांचन-मुक्ति' का प्रयोग भी एक अनन्य प्रयोग है। 1949-50 का काल था। कांचन-मुक्ति यानी पैसों से मुक्ति! केवल श्रम के आधार पर जो कुछ अन्न-वस्त्र प्राप्त हो, उस पर जीना! आठ-आठ घण्टों का कठिन परिश्रम चलता। अन्न के लिए चौदह एकड़ जमीन प्राप्त कर उस पर 'ऋषि-खेती' यानी बगैर बैलों की काशत शुरू की। सब आश्रमवासियों ने साथ मिलकर कुआँ खोदा, फिर उसी कुएँ पर रहट घुमाते-घुमाते सुबह-शाम की प्रार्थना चलती। यह वही स्थान और वही काल था, जब विनोबा से मुलाकात के लिए पधारे जयप्रकाशजी ने कहा था—'मुझे यहाँ प्रकाश की किरण दिखाई पड़ती है।'

1950 में पहला निर्णय यह किया कि आश्रम में बाहर से शाक-सब्जी नहीं आयेगी। फिर अनाज के लिए ऋषि-खेती आयी। निष्कर्ष निकला कि बैल की खेती के बनिस्बत इस खेती में डेढ़ गुनी ज्यादा प्राप्ति हुई। बैल का उपयोग पानी खींचने में, तेल घानी में, भारवहन में तो था ही।

आखिर में कांचन-मुक्ति का प्रयोग तो इसलिए था कि समाज लफंगा-जैसे पैसा के माया-मोह से छूटे और सच्ची 'श्री' की उपासना करे। इसलिए बापू के जाने के बाद, देशभर में रेलगाड़ी में घूमना हुआ, तब भी मन में सतत यह चक्र चलता रहा कि इन सारी चीजों का आधार 'पैसा' है। ऐसे साधनों का उपयोग करके क्या अहिंसक समाज-रचना हो सकेगी? कुछ नया प्राप्त होना चाहिए। यह थी खोज और यह था मनोमंथन!

### भदान-आरोहण 1951 से 1970

1949 में, मध्य प्रदेश के राउ सम्मेलन में सब साथियों के दर्शन हुए थे। उसके बाद के सर्वोदय सम्मेलन में विनोबाजी गये नहीं थे। अब 1951 में हैदराबाद में तीसरा सर्वोदय सम्मेलन होने जा रहा था। सबके अत्याग्रह से विनोबा वहाँ आने को तैयार हुए परन्तु अपने ढंग से। विनोबा की क्या रीति है? वही, बगैर पैसे की रीति! वे तो पैदल निकल पड़े। गाँव-गाँव के लोगों के साथ अन्तर के तार जोड़ते चले। कहते—'भीतर देखता हूँ तो राम दिखायी देते हैं, बाहर देखता हूँ तो कुदाल दिखती है।'

सम्मेलन में भी उन्होंने यही सन्देश दिया-अन्तःशुद्धि, बहिःशुद्धि, श्रम, शान्ति और समर्पण। यही है सर्वोदय का पंचविध कार्यक्रम। स्वराज्य मिल गया है, अब हमें सामाजिक और आर्थिक क्रान्ति का काम हाथ में लेना है।

### हिंसा की होली के बीच

1951 के इन दिनों में तेलंगाना क्षेत्र में हिंसा फूट निकली थी। साम्यवादियों के प्रचार से गरीब भूमिहीन खेत-मजदूर अपनी जमीन प्राप्त करने के अधिकार के लिए अधीर बने हुए थे और उस क्षेत्र में करीबन तीन सौ जमींदारों की कल्ल भी हुई थी। कानून और व्यवस्था पालन के पीछे, पुलिस और लश्कर के पीछे सरकार का वार्षिक पाँच करोड़ खर्च होता था। गाँव-गाँव में डर छा गया था। दिन में पुलिस का आतंक था, रात को साम्यवादियों का। विनोबा को इन सारी परिस्थितियों की जानकारी थी। सम्मेलन में से लौटते समय भी उनकी पदयात्रा ही चली।

## प्रथम भूदान

पोचमपल्ली नाम का गाँव। 18 अप्रैल का दिन! उस दिन गाँव के हरिजनों ने अस्सी एकड़ जमीन की माँग विनोबा के पास रखी थी। सायं प्रार्थना सभा में विनोबा ने ग्रामीणजनों से सहज पूछा—“इन लोगों को जमीन चाहिए। सरकार से जमीन दिलवाने में समय लगेगा, सम्भव है नहीं भी मिले! क्या आप गाँववाले इस विषय में कुछ कर सकते हो?”

उसी वक्त सभा में से एक ऊँची, पतली कायाधारी व्यक्ति उठकर बोला—“मेरे पिताजी की इच्छानुसार मैं इन हरिजन भाइयों को 50 एकड़ जमीन और 50 एकड़ सूखी जमीन देने के लिए तैयार हूँ।”

ये थे जमींदार श्री रामचन्द्र रेड्डी। विनोबा के एक वाक्य से इनके हृदय के राम जाग उठे। एक बीघा जमीन के वास्ते जहाँ सिर काटे जा रहे थे, वहाँ यह कैसा चमत्कार?”

उस रात विनोबा सो भी नहीं सके। विनोबा कहते हैं—“उस रात को मैं कभी भूल नहीं सकता। क्योंकि उस दिन मुझे अहिंसा का साक्षात्कार हुआ। मैं चिन्तन में खो गया। क्या इसमें ईश्वर का कुछ इशारा है?”

और विनोबा को प्रतीति हुई कि भगवान उनसे कुछ काम लेना चाहते हैं। देशभर में जमीन की भूख है। इसके वास्ते, खून की नदी भी बह रही है, तब कोई केवल प्रेम के नाम से जमीन माँगे तो भूमि देनेवाला भी निकल जाय। निश्चित इसमें कोई ईश्वरीय संकेत है।

श्रद्धा का दीपक जला और उसके उजाले में विनोबा ने गाँव-गाँव घूम कर जमीन माँगने का संकल्प किया। दूसरे दिन भी इस ऋषितुल्य सन्त ने लोगों से भूमिदान माँगा और लोगों ने दिया। तीसरा-चौथा-बीसवाँ-पचीसवाँ दिन! लोग देते ही गये और सवा दो महीनों की तेलंगाना-यात्रा में बारह हजार भूदान प्राप्त कर विनोबा अपने आश्रम में वापस लौटे।

## दुबारा भी यही अनुभव

इस प्रकार भूदान यज्ञ की गंगोत्री फूट निकली। पवनार वापस लौटकर फिर से अपने कांचन-मुक्ति के प्रयोग में लग गये। उन्होंने कहा—“अहिंसा की खोज मेरे जीवन का कार्य है। अहिंसा को साधने के लिए ही मेरे तमाम प्रयोग चले हैं। दुनियाभर की समस्याओं का निराकरण अहिंसा से लाने का जवाब मुझे तेलंगाना में प्राप्त हो चुका है।”

उतने में फिर दिल्ली का बुलावा आया। देश की प्रथम पंचवर्षीय योजना के बारे में चर्चा करने के लिए नेहरूजी का निमंत्रण आया। वहाँ भी वे पैदल ही पहुँचे। रास्ते में गाँव-गाँव में, प्रेम से जमीन की माँग रखी और इस सन्त की झोली प्रेम के भूदान से भर गयी।

दुबारा 'एक सन्त ने भूदान माँगा और लोगों ने गाँव-गाँव में वह दिया।' यह समाचार सुनकर देश और दुनिया की आँखें खुल गयीं। देशभर के कार्यकर्ता इकट्ठे हुए और राष्ट्र की भूमिभूख पूरी करने हेतु कुल जोतने की जमीन में से छोटे हिस्से के मुताबिक देश के पाँच करोड़ भूमिहीनों के वास्ते 'पाँच करोड़ एकड़' भूदान का संकल्प उद्घोषित हुआ। दिल्ली पहुँचे तब तक 18,000 एकड़ भूदान प्राप्त हो चुका था।

## सारे देश में पदयात्रा

फिर तो रामजी का वाण छूटा सो छूटा। पदयात्रा उत्तर प्रदेश गयी, बिहार गयी, बंगाल होकर उड़ीसा फिर सारा देश। तेरह साल तक यह पदयात्रा चली। यह चिर-पदयात्री न बारिश देखता, न गर्मी, न सर्दी। बीमारी आयी, तो भी पैर नहीं रुके। बरसात की ऋतु में चेरापूँजी में घूमना हुआ, तो वह भी मंजूर और दहकती गर्मी में राजस्थान, मध्यप्रदेश में घूमना पड़े तो वह भी मंजूर।

## भीतर गहराई में छू जाती बातें

कहते—“पुराने जमाने में अश्वमेध यज्ञ होते थे। यह प्रजासूय यज्ञ है और मैं इसका अश्व हूँ और गाँव-गाँव में अहिंसा की विजय के लिए घूम रहा हूँ।”

कोई कहता—“परन्तु इस विज्ञान के जमाने में पदयात्रा क्यों? हवाई जहाज में जायेंगे तो जल्दी पहुँचेंगे और बहुत सारी जगह जा सकेंगे।”

तो जवाब देते—“हवाई जहाज में घूमूँगा तो मुझे 'हवा दान' मिलता, मुझे तो 'भूमिदान' चाहिए, इसीलिए जमीन पर घूमना ही

अच्छा है।'

सीधी-सादी भाषा में समझाते—'सूरज की रोशनी, हवा, नदी का पानी जैसे सब लोगों के लिए है, वैसे जमीन भी भगवान की बनायी हुई चीज है, वह भी सभी के लिए है। माँ के लिए सब सन्तान एक सरीखी, वैसे भूमिमाता की सब सन्तान, एक समान, सबको माँ की सेवा करने का हक मिलना चाहिए। मैं आपके पास भिक्षा माँगने नहीं आया हूँ मैं तो आपको प्रेम की, अहिंसा की दीक्षा देने आया हूँ आपका छठा भाई बनकर आया हूँ। इन गरीब भूमिहीन भाइयों का प्रतिनिधि बनकर अपना हक माँगने आया हूँ।'

वे माँगते गये और लोग देते गये। गजब का था वह वातावरण। मानो त्याग और भाईचारा का पूरा ही उमड़ पड़ा हो। किसी ने कहा—'आप थोड़ी-थोड़ी जमीन लेकर जमीन के टुकड़े कर रहे हैं।' तब कहा—'मैं जमीन का टुकड़ा करने नहीं, मैं तो दिलों के टुकड़ों को जोड़ने आया हूँ।'

इस तरह तो गरीबी का ही बँटवारा होगा।—इस दलील के जवाब में कहते—'मैं तो अमीरी और गरीबी दोनों को मिटाकर अमीर-गरीब दोनों को बचा लेने आया हूँ।'

कभी कहते—'मैं विविध परिवर्तन चाहता हूँ पहला, हृदय-परिवर्तन, फिर जीवन-परिवर्तन और उसके बाद समाज-परिवर्तन।'

9-2-1952 में, बुद्ध पूर्णिमा के दिन कहा— 'भूदान यज्ञ का काम धर्म चक्र-प्रवर्तन का काम है।' पहले तो 'एकला चलो रे' चला फिर सेवापुरी सर्वोदय सम्मेलन में, 1952 में दो सालों में 25 लाख एकड़ भूदान प्राप्त करने का संकल्प देशभर के सर्वोदय कार्यकर्ताओं ने किया और समस्त देश में मानो भूदान गंगा का प्रवाह ही निकल पड़ा। विभिन्न राज्यों के प्रमुख रचनात्मक कार्यकर्ता तथा गांधीजनों ने आन्दोलन में अपना हविर्भाग दिया और नयी पीढ़ी के उगते नौजवानों में भी जोश और उत्साह प्रकट हुआ।

विनोबा ने छठा हिस्सा जमीन माँगी। ग्रामदान माँगा। उसमें गाँव की जमीन की मालिकी सारे गाँव की हो जाय और सारे काश्तकार अपनी जमीन का बीसवाँ हिस्सा गाँव के भूमिहीनों के वास्ते निकालें, फिर गाँव का कारोबार गाँव खुद चलायें। इस प्रकार के संकल्प-पत्रवाले हजारों ग्रामदान मिले।

किसीने कहा—'यह तो कागजी ग्रामदान हुए।' तब विनोबा ने कहा—'आप सरकार बनाने के लिए जो मतदान करते हैं, वह भी तो कागजी ही होता है। संकल्प से कार्य का आरम्भ होता है।'

एक बार स्रोत फूटा, फिर तो भूदान गंगा की अनेकानेक शाखा-प्रशाखाएँ बहने लगीं। सम्पत्तिदान, श्रमदान, समयदान और 1954 में बिहार के बोधगया सम्मेलन में जयप्रकाशजी ने लोगों से इस कार्य के लिए 'जीवनदान' की माँग रखी और स्वयं भूदानी बाबा ने उनके करकमलों में अपना जीवनदान देते हुए लिखा—'भूदानयज्ञमूलक ग्रामोद्योग-प्रधान अहिंसक क्रान्ति के लिए मेरा जीवन समर्पण हो' और फिर तो जीवनदानियों की सरिता फूट निकली।

एक बार किसी ने सुझाया—'विनोबाजी इन जीवनदानियों का सम्मेलन बुलाइए न।'

तब हँसते-हँसते जवाब दिया—'जीवनदानियों का सम्मेलन इस पृथ्वी पर? अरे, उनका सम्मेलन तो स्वर्ग में होगा। अन्तिम साँस तक इस कार्य में जीवन दिया गया या नहीं, इसकी कसौटी तो जीवन पूरा होगा तब होगी न?'

## पावन-प्रसंग

इस भूदान-यात्रा में पावन प्रसंग भी कितने बने? ढलती शाम को नैनीताल की वह शबरी विनोबा-निवास पहुँची। बाबा तो उस समय निद्रालोक में पहुँच गये थे। सारी रात ठण्ड में बैठी रही। सुबह सन्त के चरणों में अपनी थोड़ी-सी जमीन का एक हिस्सा समर्पित कर धन्यता प्रकट की। एक तरफ ऐसी विदुर की भाजी और दूसरी तरफ ढाई लाख एकड़ जमीन का दान देकर कुदाल से लोगों की जमीन पर मेहनत करके श्रमदान करनेवाले रामगढ़ के महाराजा। कहीं तो समर्पण की ऐसी वर्षा हुई कि 'मेरा सर्वस्व सन्त के चरणों में'—फिर आग्रह कर-करके थोड़ा लेकर बाकी का वापस देना पड़ा। ऐसे अनेक पावन-प्रसंग घटित हुए, जिसमें लोकहृदय के भीतर संगोपित सद्भावना बाहर प्रकट हुई।

साधु तो था लंगोटी-झोलीवाला, परन्तु उसकी झोली भर उठी। समस्त दुनिया के समक्ष उन्होंने अहिंसक समाज-निर्माण करने की एक सुन्दर प्रक्रिया प्रकट कर दिखायी। कत्ल तो हरगिज नहीं, कानून का आश्रय भी नहीं, परन्तु करुणा की लालित्यपूर्ण प्रक्रिया। इस आन्दोलन से प्रेरित होकर विदेशी लेखकों ने भी पुस्तकें लिखीं—जैसे The Saint on the march : Bhoodan Movement इत्यादि।

इस आन्दोलन से सारा भारत जाग उठा। सर्वत्र सद्भाव और त्याग की एक लहर-सी फैल गयी। लोगों के दिलों में एक बात

स्थिर होती चली गयी कि अब तो जमीन बँट कर रहेगी। विनोबा ने भूदानयज्ञ को आन्दोलन नहीं, 'आरोहण' कहा, जिसमें घड़ी की लोलक की दायीं-बायीं ओर घूमनेवाली आन्दोलनात्मक गति नहीं, परन्तु प्रतिक्षण ऊपर चढ़नेवाली गति है।

### 'ग्रामदान' को हरी झण्डी

पश्चिम के चिन्तक श्री लूई फिशर ने लिखा कि—'ग्रामदान यह पूर्व से आया सर्वोत्तम विचार है।' 1957 में कर्नाटक के येलवाल में सर्वपक्षीय राजनेताओं की ग्राम-दान-परिषद् हुई, जिसने सर्वसम्मतिपूर्वक 'ग्रामदान' के कार्यक्रम को अपना समर्थन घोषित किया। इस परिषद् में विनोबा ने 'ग्रामदान' को राष्ट्र-संरक्षण का साधन—डिफेन्स मेजर कहा। 1957 में सारे देश के गगन में 'सत्तावन में हो स्वराज' का मंत्र जाग उठा।

1959 तक विनोबाजी ने मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल, उड़ीसा, दक्षिण के चारों राज्य, महाराष्ट्र, गुजरात तथा राजस्थान की पदयात्रा पूरी की और 1959 में कश्मीर-प्रवेश करते हुए कहा—'मैं यहाँ देखने-सुनने तथा प्यार करने आया हूँ।' और विनोबा को वहाँ भरपूर प्रेम मिला। उन्होंने यह सूत्र भी वहीं दिया कि संकुचित सम्प्रदाय तथा राजनीति के दिन अब लद गये हैं, अब तो अध्यात्म और विज्ञान का युग चलेगा।

### हरिजन-मन्दिर-प्रवेश के लिए प्रहार-सहन

अहिंसा के इन क्रान्ति-चरणों में दूसरे भी अनेक अनपेक्षित चमत्कार घटित हुए। पदयात्रा जब बिहार पहुँची, तब वैद्यनाथ धाम के देवघर मन्दिर के पण्डों के साथ लाठी-मार खाकर विनोबा मन्दिर से वापस लौटे थे। तब कहा था—'मैं तो गया था प्रभु का दर्शन पाने, परन्तु उनका स्पर्श पाकर मैं वापस लौटा।' परन्तु यह भेदासुर खतम हो यह जरूरी था। उड़ीसा के जगन्नाथपुरी में एक विदेशी फ्रेंच महिला के साथ होने से विनोबा-टोली को प्रवेश नहीं मिला, उसके बाद कांचीपुरम् गुरुवायूर के मद्रास-केरल के मन्दिर-द्वार विनोबा खटखटाते रहे। आखिर कर्नाटक के गोकर्ण-महाबलेश्वर में और पंढरपुर के विठोबा मन्दिर के बन्द द्वार खुले और हरिजन तथा अनेक विधर्मी साथियों के साथ विनोबा ने अविरत आँसू के साथ विठोबा का दर्शन किया। पंढरपुर का मन्दिर 'विश्व-मन्दिर' घोषित हुआ और मन्दिरों के लिए मानो एक नया द्वार ही खुल गया।

### बागियों का शस्त्र समर्पण : सन्त की बगावत

ऐसा ही भव्य और दिव्य चमत्कार घटित हुआ—चम्बल के बीहड़ों में। जिनका नाम सुनते ही गर्भिणियों के गर्भ गिर जाते थे, चम्बल प्रदेश के ऐसे 19 खूँखार डाकुओं ने विनोबा के चरणों में अपने शस्त्रास्त्र समर्पित कर दिये। 19 मई, 1960 के दिन लुक्का (लोकमन) जैसे भयानक कहे जानेवाले डाकुओं ने जब समझ-बूझकर, स्वेच्छापूर्वक अपना आत्मसमर्पण कर दिया, तब तो मानो पृथ्वी पर स्वर्ग उतर आया।

बागियों के प्रदेश में दाखिल होते ही विनोबा ने कह दिया—'मैं डाकुओं के नहीं, सज्जनों के प्रदेश में पहुँच रहा हूँ। आप यदि बागी हैं, तो मैं भी बागी ही हूँ। आपका मित्र हूँ और मेरी भी वर्तमान समाज के सामने बगावत ही चल रही है। हमारी बगावत की पद्धति भिन्न है। आत्मा की शक्ति से बगावत होगी, तो समाज में न डाकू रहेगा, न पुलिस। प्रेम और शान्ति की स्थापना होगी और उसमें से स्वस्थ समाज का निर्माण होगा।'।

बहुत से लोग मुझसे पूछते हैं कि क्या सचमुच में बागियों का हृदय-परिवर्तन हुआ? तब मैं उनसे कहता हूँ कि उनका परिवर्तन हुआ कि नहीं, मुझे मालूम नहीं, लेकिन अहिंसा के इस चमत्कार से मेरा परिवर्तन तो हो ही गया है। मेरे में मृदुता आ गयी है।

### एक परिपूर्ण समाजशास्त्र

सर्वोदय एक स्वतंत्र विचारधारा है। वह कोई वाद-प्रतिवाद नहीं, बल्कि समाज-निर्माण का एक परिपूर्ण जीवनशास्त्र है। भूदानरूपी बीज में से इस विचारधारा का एक परिपूर्ण शास्त्र विकसित हुआ—मानो बीज में से वटवृक्ष फैला।

भूदान में से ग्रामदान, तालुकादान, प्रखण्डदान और राज्यदान के अंकुर तो फूटे ही, निधिमुक्ति-तंत्रमुक्ति जैसे आयाम भी प्राप्त हुए। इनके अलावा सर्वोदय-पात्र, शान्ति सेना, ग्रामस्वराज्य, लोकनीति, जयजगत् की विचारधारा पर आधारित ऐसे विविध कार्यक्रम प्रकट हुए जिसकी बुनियाद पर सर्वोदय के अहिंसक समाज की इमारत खड़ी हो सके। देशभर में यह सारा प्रतीक रूप में हुआ, परन्तु

इन प्रतीकों के कारण सम्भावना साकार हो सकती है, ऐसा विश्वास पैदा कराया।

कुछ लोग आक्षेप करते हैं कि भूदान का सारा दान तो आखिर कागज पर ही हुआ न? बिलकुल ऐसा तो हरगिज नहीं है। लोगों के सिर काट-काटकर या सरकारी कानून की ढेर सारी धाराओं पर हस्ताक्षर करके जितनी जमीन गरीबों में बाँटी गयी है, उससे अनेक गुनी जमीन भूदान द्वारा भूमिहीनों के हाथ में प्रत्यक्ष पहुँच सकी है। कुल पचास लाख एकड़ जमीन भूदान द्वारा प्राप्त हुई। उसका तीसरा हिस्सा सूखी, बंजर, कंकड़वाली गिनकर बाद कर लें, तो भी कुल 21 लाख एकड़ जमीन का बाँटवारा हो सका। यह तो हुई ठोस प्राप्ति।

और कागज पर की करामात ने क्या किया? इस कागजी क्रान्ति का भी कोई कम महत्त्व नहीं है। लाखों दाताओं के दिलों में भोग विरुद्ध त्याग का कुरुक्षेत्र खड़ा हो जाता था, एक तरफ स्वार्थ खींचे, समाज दूसरी ओर और आखिर देने की बात पर भीतर से सम्मति प्रकट हो, तभी तो दान पत्र पर हस्ताक्षर हो सकते थे। यह अन्तर्द्वन्द्व और उसमें त्याग भावना की विजय यह कोई छोटी-सी सिद्धि तो नहीं मानी जायगी। दुर्भाग्यवश भूदान का यह काम बाद में मन्द पड़ गया, अन्यथा दानपत्रों के उस ढेर पर ही हम ग्रामस्वराज्य का भव्य भवन खड़ा कर सकते थे। आखिर ये सारी सरकारें बनती हैं, वह भी मतों के कागज पर ही तो बनती हैं न! तो फिर गाँव की ग्राम-सरकार, या जनता सरकार खड़ी करने के लिए लोकहृदय में से प्रकट हुए त्याग-भावना के प्रतीक रूप ये दानपत्र क्या पर्याप्त नहीं होते?

### भूदान-यात्रा का उप-फल

यह तो हुई भूदान-आन्दोलन की सीधी कार्यसिद्धि। मुख्य पैदाइश! परन्तु इस यात्रा में बाय-प्रोडक्ट, गौण पैदाइश के रूप में भी जो निकला वह भी कितना अनमोल है। क्या है यह अनमोल चीज?

विनोबा कहते हैं—अहिंसा की खोज यह मेरा जीवन है। मेरे जीवन के तमाम कार्य दिल जोड़ने के एकमात्र उद्देश्य से प्रेरित हैं। भूदान द्वारा गरीब-अमीर के दिल जुड़े। 'विश्व-मन्दिर' के कार्यक्रम से सवर्ण-अवर्ण के भेदासुर को ललकारा। ऐसा भी एक भेदासुर है विविध संकुचित सम्प्रदायों का, जो समाज को भारी पीड़ा पहुँचा रहा है। धर्म के नाम से लोगों के हृदय पर कातिलाना प्रहार होते ही रहते हैं और समाज की दीवारों में दरारें पड़ जाती हैं। समाज का एक स्वस्थ भवन-निर्माण करने के लिए विनोबा ने 'सर्वधर्म समन्वय' का विचार रखा और उसकी प्रत्यक्ष प्रक्रिया के रूप में, विविध धर्मों के सार चुनकर सर्वधर्मसार के ग्रन्थ खुद ने ही तैयार कर दिये। विविध धर्मों का सार-चयन यह एक साहसपूर्ण कदम था। विनोबा का 'कुरान-सार' पूर्व पाकिस्तान में (अब बांग्लादेश) बिके और मौलवियों का उसे आशीर्वाद मिला, यह कोई छोटी सिद्धि नहीं है। पैगम्बर की वाणी में इधर-उधर एक लफ्ज की भी हेराफेरी नहीं कर सकते—एसी दृढ़ मान्यता को पिघला कर सब धर्मों के नवनीत रूप धर्मसार प्रकट किया। इसी प्रकार जैन-धर्म के भी अनेक ग्रन्थ थे। विनोबा की ही प्रेरणा से, अनेक धुरंधर जैनाचार्यों ने इकट्ठे बैठकर जैनधर्म का सारस्वरूप 'समण-सुत्तम्' का दोहन किया, वह भी इस युग को एक विरल घटना ही मानी जायगी।

### स्त्रियों का ब्रह्मविद्या-क्षेत्र में प्रवेश

अपने दोनों छोटे भाई विनोबा के पदचिह्नों पर चलकर संन्यासी बनकर आजीवन ब्रह्मचारी रहे, और शान्ताताई को परम्परानुसार शादी-ब्याह करना पड़ा, इसकी पीड़ा अन्तर में थी। इसलिए पदयात्रा के दौरान, बहुत बार कहा करते थे कि मुझे अपनी अन्तिम आयु बहनों की सेवा में देना है। जब तक ब्रह्मविद्या में स्त्रियों का प्रवेश नहीं होगा, तब तक अध्यात्म विद्या एकांगी और अधूरी रह जायगी। इस भूदान-पदयात्रा को एक भव्य सिद्धिरूप कार्य सम्पन्न हुआ वह है—

स्त्रियों का ब्रह्मविद्या के क्षेत्र में प्रवेश और उसीके वास्ते खड़ा हुआ महिलाओं का आश्रम यानी ब्रह्मविद्या मन्दिर। वैसे तो अहिंसक समाज के प्रमुख प्रेरणास्रोत से विद्युत-संचार करनेवाले विविध आश्रमों का निर्माण भी इसी पदयात्रा में हुआ। देश में कुल छह आश्रम स्थापित हुए। प्रत्येक आश्रम का विशिष्ट उद्देश्य और विशिष्ट माध्यम। बिहार के बोधगया में 'समन्वय आश्रम', पंजाब के पठानकोट में 'प्रस्थान आश्रम', इन्दौर में 'विसर्जन आश्रम' दक्षिण कर्नाटक में 'विश्वनीडम् आश्रम' आसाम की सीमान्त पर बहनों का 'मैत्री आश्रम' और देश के मध्य में वर्धा के नजदीक पवनार में बहनों का यह ब्रह्मविद्या मन्दिर।

स्त्रियों में पड़ी सुषुप्त आन्तरिक शक्ति को जगाने के कार्य को विनोबा ने 'स्त्री-शक्ति-जागरण' नाम दिया और उनकी प्रेरणा से देश में यह कार्य पनपा। ब्रह्मविद्या मन्दिर में, वर्षों से भूदान-कार्य में यशस्वी काम करनेवाली अनेक महिलाएँ जुड़ीं। भारत के प्रायः सभी प्रान्तों की महिलाओं का प्रतिनिधित्व हो गया। उपरान्त जर्मनी, जापान, फ्रांस की बहनें भी सदस्या बनकर रहीं। करीबन तीस बहनों की

सामूहिक साधना का आरम्भ 25 मार्च, 1959 को हुआ। यहाँ की साधना के मुख्य पाँच अंग हैं—श्रमनिष्ठा, स्वाध्याय, भक्ति, ब्रह्मचर्य और सामूहिक साधना। विज्ञान युग की यह संन्यासिनी बहनें 'भिक्षा' पर आजीविका नहीं चलातीं, बल्कि तीन घण्टे खेत में और दो घण्टे प्रेस में मजदूरी करती हैं। विनोबा ने इसको 'ब्रह्मविद्या के क्षेत्र में मजदूरी का प्रवेश' कहा। इसी तरह, 'सर्वसम्मति' का आग्रह यह भी इस समूह जीवन का विरल पहलू है। कहा जाता है कि चार बहनें कभी एक साथ रह नहीं सकतीं। परन्तु यहाँ तो तीस-तीस बहनें 70-71 सालों से साथ रहती आयी हैं और नूतन अहिंसक समाज-रचना की बुनियाद खड़ी कर रही हैं।

विनोबा जब 7 मार्च, 1951, को पवनार से शिवरामपल्ली हेतु निकले तब 13 वर्ष, 1 महीना और तीन दिन के बाद, पवनार वापस आये। वह दिन था 10 अप्रैल, 1964 का। सूर्यनारायण की सातत्यपूर्वक यात्रा चली। 'धर्मचक्र प्रवर्तन' का कार्य हुआ। पदयात्रा उसका माध्यम रहा। पुराण काल में भी, भारत देश में अनेक साधु-सन्तों ने कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक पैदल विहार यात्रा की है। शंकराचार्य, रामानुज, वल्लभाचार्य जैसे आचार्यों की तरह विनोबा की भी भारतभर में यात्रा चली। वे कह सकते थे कि—सब हमारा प्रभु पग-पग जोहा—भारत देश की धरती के कण-कण का स्पर्श पाये ये सन्त हैं। कुल 36,000 मील की पदयात्रा हुई। मानो वामनावतार का एक विराट कदम। भारत देश के अलावा, 1962 में पूर्व पाकिस्तान में भी पदयात्रा हुई। यह एक विशेष उपलब्धि ही मानी जायगी। एक-एक स्थान की अपनी-अपनी समस्या होती है। उस समस्या के साथ वैश्विक समस्या को जोड़कर विनोबा निराकरण सुझाते चले। पाकिस्तान में पहले ही दिन भूदान प्राप्त हुआ और विनोबा ने कहा-मुझे उस मनुष्य के चेहरे में अल्लाह का दर्शन हुआ। पाकिस्तान में विनोबा ने ए.बी.सी. त्रिकोण, यानी अफगानिस्तान, बर्मा, सिलोन को समाविष्ट करनेवाला भारत-पाक-कॉन्फेडरेशन की बात रखी।

### तेरह वर्षों के बाद वापस घर

1964 में भारत-यात्रा की एक परिक्रमा पूरी करके पवनार पहुँचे थे, परन्तु हाथ में लिया हुआ काम तो पूरा नहीं हुआ था। शरीर भी अब क्षीण हुआ था। चक्कर आते रहने से पदयात्रा में ही रास्ते पर गिर जाते थे। इसलिए सबकी सलाह से तय हुआ कि कुछ दिन विश्राम किया जाये।

वैसे भी परंधाम उनका अपना धाम। वैसे उनके लिए तो सारा विश्व ही उनका अपना धाम था। फिर भी उनकी यह साधना भूमि, प्रचण्ड कर्मयोग भूमि भी यही थी न! और अब तो 'ब्रह्मविद्या मन्दिर' में परंधाम का रूपान्तर हो गया था और बहनों का भी उन पर प्रथम अधिकार था ही। इस मौके पर विनोबा ने एक महीने का मौन रखा। तेरह सालों में कम-से-कम तेरह हजार व्याख्यान तो हुए ही थे। उनको मौन लेने का अब अधिकार था।

डेढ़ साल तक पवनार-निवास हुआ। इस बीच, भाषा के प्रश्न पर देश में खूनी दंगे हुए। इसमें विनोबा को बीच में पड़ना पड़ा और पाँच दिनों के उपवास करके उन्होंने आग को बुझाने का शान्ति-कार्य किया। इस दौरान, मनुशासनम, विनयांजलि, गुरुबोधसार, वेदांतसुधा जैसे ग्रन्थों का सम्पादन-संकलन किया।

### फिर से बिहार

1965 में गोपुरी के सर्व सेवा संघ के अधिवेशन में दस हजार ग्रामदान करने का संकल्प बिहार राज्य ने किया और इस प्रयाण को नाम मिला—तूफान। 1965 की 24वीं अगस्त को इस तूफान-यात्रा का आरम्भ हुआ। यह वाहन-यात्रा थी।

बिहार में सचमुच में 'तूफान' खड़ा हुआ। पहले 100 दिनों में 4000 ग्रामदान घोषित हुए। परन्तु उतने में ही विनोबा को 'फिशर' की पीड़ा शुरू हुई और उनका तीव्र मंथन शुरू हुआ कि एक ही व्यक्ति के आधार पर सारा कार्यक्रम चलता रहे यह वैचारिक रूप से भी ठीक नहीं है। यह 'नेतृत्व' का नहीं, 'गणसेवकत्व' का युग है। इसलिए लोगों के पुरुषार्थ से ही काम आगे बढ़ना चाहिए। इस चिन्तन के परिणामस्वरूप विनोबा ने 'सूक्ष्म-कर्मयोग' का प्रारम्भ किया। यह दिन था—7 जून, 1966।

यह सूक्ष्म-कर्मयोग, निवृत्ति, कर्ममुक्ति—ये सारे क्या केवल शब्द-वैभव ही हैं या केवल निष्क्रियता है? गांधीजी कहते थे कि शुद्ध मनुष्य की निष्क्रियता में भी एक महान् शक्ति होती है। गीता ने इसको 'अकर्म में कर्म' कहा है। करते हुए भी कुछ नहीं करना, और न करते हुए भी करना, ऐसी यह दुहरी साधना है। मनुष्य बड़ा भारी कर्म-जंजाल खड़ा करके भी बहुत थोड़ा काम कर सकता है, और बाहर से कुछ स्थूल काम किया हो, तो भी बड़ा परिणाम ला सकता है। मनुष्य का चित्त निर्मल हो तो उसके थोड़े-से काम भी बड़े परिणाम ला सकते हैं और आसक्ति रहित कर्म करके 'करते हुए भी न करनेवाला' बन सकता है। कुछ लोग जीवन के अन्तिम श्वाँस तक स्थूल कार्य करते रहते हैं। परन्तु विनोबा की वृत्ति भिन्न प्रकार की थी। विनोबा ने कहा—गांधीजी के पास पहुँचे मुझे पचास साल

पूरे हुए। इन सारे वर्षों के स्थूल कर्मों की सेवा भगवान को समर्पित कर, समाज के प्रति अभिमुखता रखकर, अब मैं 'सूक्ष्म कर्मयोग' में प्रवेश करूँगा, मतलब कि कुछ न करते हुए भी, करने की भूमिका में रहूँगा।

सूक्ष्म कर्मयोग में प्रवेश यानी क्या? बड़ी-बड़ी सभाओं में अपने व्याख्यान बन्द किये, पत्र-व्यवहार बन्द हुआ। अब तो छोटी-छोटी गोष्ठियों में वार्तालाप करते हैं-जिसको नाम दिया 'चेम्बर प्रैक्टिस'। कार्यकर्ताओं को सलाह-सूचना देते हैं, परन्तु निर्णय तो सब साथ में मिलकर सर्वानुमति से ही करें, ऐसा आग्रह रखते हैं।

इसी काल में बाइबिल तथा ऋग्वेद का सार तैयार हुआ। उपनिषदों के सार रूप 'अष्टादशी' तैयार हुआ। 'अभंगव्रतों' में 21 ज्यादा अभंग जुड़ गये। समूचा 'बिहार दान' घोषित हुआ। 1967 में 'आचार्यकुल' की एक अत्यन्त महान् संकल्पना प्रकट हुई, जिसको गुजरात के शिक्षाशास्त्री श्री मूलशंकरभाई भट्ट ने इस 'शताब्दी का सर्वोत्तम विचार' कहा। सारा देश नैतिकता में सर्वोच्च ऐसे आचार्यों के परिवार के कहे में रहना चाहिए, इस बुनियाद पर उन्होंने आचार्यों को निर्भय-निर्वैर और निष्पक्ष होने का निर्देश किया। इन विचारों के आधार पर 8-3-1968 को कहलगाँव में 'आचार्यकुल' की स्थापना हुई।

वैसे तो विनोबा छह महीनों के लिए बिहार में 'तूफान' खड़ा करने गये थे, परन्तु चार साल वहीं रह गये। उतने में सरहद के गांधी बादशाह खान 22 साल के बाद भारत पधार रहे थे, इसलिए उनसे मिलने के लिए विनोबाजी ने सेवाग्राम का रास्ता पकड़ा।

और 1970 में विनोबा फिर से ब्रह्मविद्या मन्दिर के निजधाम में आ गये। साँझ हो गयी थी और पक्षी अपने बसेरे में वापस लौट आया था।

## सूक्ष्म कर्मयोग 1970 से 1982

1970 में विनोबा फिर से अपने पवनार आश्रम में कर्ममुक्ति का सन्देश लेकर आ गये। वैसे सूक्ष्म कर्मयोग में थोड़ी-बहुत 'कर्म-मुक्ति' शुरू तो हो गयी थी, फिर भी बिहार के काम में थोड़ा ध्यान देना पड़ता था। 1970 में पवनार आकर अक्टूबर, 1970 में क्षेत्र-संन्यास और स्थानकवास की घोषणा की, तब से कर्ममुक्ति के साथ-साथ ग्रन्थमुक्ति, अध्ययन-मुक्ति और अध्यापन-मुक्ति भी हुई।

### कर्ममुक्ति में प्रभुस्मरण

बस, फिर अब क्या करना है? आश्रम में सफाई करते रहते थे। कहते थे—'यह मेरा जाप है। एक-एक तिनका उठाता हूँ उसके साथ नामस्मरण चलता है।' वैसे तो विनोबा ने स्वयं अपने जीवन के चार विभाग किये हैं—1895 से 1916 तक के काल को 'अयुक्तः' यानी कि साधनापूर्व काल, 1916 से 1951 तक के काल को 'युक्तः' यानी कि साधनापूर्ण काल, 1951 से 1970 तक का काल यानी 'वियुक्तः' मतलब विशेषरूप से प्रायोजित काल और 1970 से अन्तिम क्षण तक के काल को 'मुक्तः' कहा।

### 'पंचायतन' का अभिध्यान

1970 के अक्टूबर में क्षेत्रसंन्यासी बनकर स्थानकवास का संकल्प जाहिर हुआ। हमारे जैसे सामान्य जनों को ये सारे केवल भिन्न-भिन्न शब्द लगे, परन्तु अध्यात्मपथ के साधकों के लिए तो ये सारे ऊपर पहुँचनेवाली सीढ़ी के अलग-अलग सोपान जैसे काम थे। क्षेत्रसंन्यास का संकल्प लिया तब उन्होंने कहा कि अब मेरा 'अभिध्यान' चलेगा। मतलब कि बिलकुल संसार से विमुख हो जाना ऐसा नहीं, दुनिया से अभिमुख होकर जो लोग मदद चाहें उन्हें सूक्ष्म रीति से मदद पहुँचाना। कार्यकर्ताओं को भी कह दिया कि 'मुझे हर माह पत्र लिखना। मैं उसका जवाब नहीं दूँगा। परन्तु पत्र पढ़ूँगा, उस पर चिन्तन करूँगा और उसमें जो कुछ शुभ होगा, उसके साथ अपना मानसिक संकल्प जोड़ दूँगा।'

इसी समय उन्होंने 'शंनारगदे' के पंचायतन की बात रखी। 'शं' यानी शंकर—मतलब ब्रह्मविद्या। 'ना' यानी नारायण, मतलब ग्रामस्वराज्या। 'र' यानी रवि—सूर्यनारायण यानी शान्तिसेना। 'ग' यानी गणपति, विद्या का ईश्वर। इसीके वास्ते आचार्यकुल और आखिर में 'दे' यानी देवी-देवनागरी लिपि।

इस पंचायतन के पाँच कार्यों के लिए अपना अभिध्यान रहेगा ऐसा कहा। कार्यकर्ताओं को वे एक ही बात कहते थे कि कोई एक जिला अपनाओ और उसे 'गांधी-जिला' बनाने के लिए सारे रचनात्मक कार्य हाथ में लो।

वैसे भी विनोबा का जीवनभर का कार्य जनता-जनार्दन के बीच रहा था। उनका आन्दोलन भी जन-आन्दोलन ही था। सत्ता या पक्ष-विपक्ष की राजनीति के साथ उनको कुछ लेना-देना नहीं था। उन्होंने तो यहाँ तक कह दिया था कि मेरा जन्म ही सत्ता को, राजनीति को तोड़ने के लिए हुआ है। राजनीति तो राक्षसों का शास्त्र है, उसे भूल जाओ और विश्व का चिन्तन करो। आज की डेमोक्रेसी (Democracy) वास्तव में डेमन-क्रेसी (Demoncracy) (राक्षस-शाही) बन गयी है। वर्तमान राजनीतिक और संसदीय लोकशाही के लिए उनकी यहाँ तक की राय बनी हुई थी।

### बिहार-आन्दोलन और आपात्काल

इसीलिए 1974-75 में आदरणीय स्व. श्री जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में सरकार को विसर्जित करने का जो 'बिहार आन्दोलन' चला और सर्व सेवा संघ के साथियों ने उसमें जुड़ने का जो रुख अपनाया, तब भी आरम्भ में विनोबा ने इस राजनीतिक मामलों में न पड़ने की सलाह दी। पीछे से कुछ लोगों की तीव्र इच्छा देखकर उन्हें लगा कि इस मुद्दे पर वर्षों की अथाह मेहनत पर खड़ा हुआ सर्व सेवा संघ टूट न जाय, इसीलिए कार्यकर्ताओं को 'सत्य-अहिंसा-संयम' की त्रिगुटी की गोली देकर अपनी-अपनी रुचि अनुसार काम करने की सलाह दी।

बाद में तो बिहार-आन्दोलन सारे देश में फैला और दिल्ली की सत्ता खतरे में आ गयी। तत्कालीन सरकार ने आपात्काल घोषित करके राष्ट्र के अनेक नेताओं को जेल में डाल दिया। ये सारी घटनाएँ काले बादल-जैसी देश पर उतर आयीं।

विनोबा की भूमिका तो आरम्भ से ही दीपक-जैसी साफ थी। यह सारा उपक्रम खड़ा करने के लिए उनका कोई अभिक्रम या साथ-सहकार तो नहीं ही था, बल्कि साथियों को ऐसा करने से रोकने का थोड़ा प्रयास भी उन्होंने किया था। आपात्काल जाहिर करने तक की परिस्थिति आ पड़ी, तो एक तरफ साथियों को सांत्वना देते रहे, दूसरी ओर सत्ताधीशों को आपात्काल दूर करने के लिए समझाते रहे। ध्यान में रहना चाहिए कि यह सारा सूक्ष्म कर्मयोग और कर्ममुक्ति के साधना-प्रदेश में प्रविष्ट जीवनसाधक को करना था, जिनकी कर्म-प्रक्रिया परम्परागत साधकों से कुछ भिन्न प्रकार की थी।

### आचार्यों का अनुशासन

विनोबा को स्पष्ट समझ में आ रहा था कि यह सारा हुआ क्योंकि देश में कोई सर्वोच्च नैतिक तटस्थ शक्ति संगठित स्वरूप में पनप नहीं सकी थी, जिसके अनुशासन में सत्ताधारी और सत्ताकांक्षी विरोध-पक्ष रहे। इस प्रकार का 'आचार्यों का अनुशासन' खड़ा करके सत्ता का शासन इसके कहे में रहे—यह बात 1975 की 25वीं दिसम्बर को अपने एक साल का मौन छोड़ते वक्त विनोबा ने कही।

### गोहत्याबन्दी के लिए सत्याग्रह

यदि सत्ता का शासन आचार्यों के अनुशासन में नहीं रहेगा तो सत्याग्रह करने का प्रसंग आ सकता है—यह बात 1975 में विनोबा ने कही, और 1976 में तो ऐसा सत्याग्रह करने की अनिवार्यता खुद विनोबा के सिर पर ही आ पड़ी।

1976 में आचार्यों के सम्मेलन में सरकार गोवधबन्दी का कानून लागू करे उसकी जिम्मेदारी आचार्यों को उठा लेनी चाहिए, यह बात विनोबा ने रखी थी। 1976 का वर्ष विनोबा की माँ का जन्म-शताब्दी का वर्ष था। माँ को तो वे एक दिन भी भुला नहीं सकते थे। उसी माँ ने विनोबा को कहा—'विन्या, मैंने तुमको बचपन में सिखाया था कि तुलसी को पानी देकर और गाय को खिलाकर खाना, यह बात तुम भूल गये क्या? आज तो हजारों गायें कट रही हैं। तुम गाय के लिए कुछ करो। गाय बचेगी तो भारत के लिए बड़ा लाभ होगा।'

उस वक्त विनोबा को 81 वर्ष पूरे होने में तीन महीने बाकी थे और ऐसे में माँ का यह आदेश। परन्तु माँ की बात टालने का तो कोई प्रश्न ही नहीं था, इसलिए विनोबा ने जाहिर कर दिया कि अगले तीन महीनों में, यानी कि 11 सितम्बर, 1976 तक यदि भारत सरकार गोहत्याबन्दी की घोषणा नहीं करेगी तो मैं आमरण अनशन पर उतरूँगा। अप्रैल महीने से ही विनोबा ने पूर्व-तैयारी के रूप में अपना आहार आधा करके आंशिक उपवास तो शुरू कर ही दिये थे।

परन्तु विनोबा को उपवास नहीं करना पड़ा। उस वक्त इन्दिरा-सरकार थी। उन्होंने आठवीं सितम्बर को पश्चिम बंगाल तथा केरल राज्यों को छोड़ कर, बाकी भारत के तमाम राज्यों में कानून द्वारा गोहत्या पर प्रतिबन्ध डाल दिया।

परन्तु बाकी के दो साम्यवादी शासनवाले राज्यों में गायों की जो निर्मम हत्या होती थी, उसकी विनोबा को अपार पीड़ा थी,

इसलिए 1979 में पहली जनवरी से फिर से आंशिक उपवास शुरू करके, 22 अप्रैल तक भारतभर में सम्पूर्ण गोहत्याबन्दी नहीं होगी तो पूर्ण उपवास पर उतर जाने का संकल्प जाहिर किया।

### पाँच दिन के उपवास

देशभर के तमाम कार्यकर्ता गोहत्याबन्दी का कानून बनवाने के लिए सरकार पर दबाव डालने तथा व्यापक जनमत तैयार करने के काम में लग गये। केरल तथा कलकत्ता काम के मुख्य केन्द्र बने। मानो यज्ञ का प्रतिष्ठापन हुआ हो उस प्रकार से कार्यकर्ताओं का सर्वस्व चिन्तन तथा समस्त पुरुषार्थ आहुति के रूप में लगता रहा। तिस पर भी, 22 अप्रैल आ पहुँची और सरकार की ओर से कोई स्पष्ट घोषणा न होने से विनोबाजी ने पवनार में आमरण उपवास शुरू कर दिये।

सारे देश में मानो हलचल मच गयी। गाय तो भारतीय संस्कृति का प्राण है। भारतीय कृषि की रीढ़ समान गाय-बैल की इस प्रकार अन्धाधुन्ध कत्ल होती रहे तो देश कहाँ जाकर खड़ा रहेगा। सरकार पर काफी दबाव पड़ा और आखिर मेरे शासन में एक सन्त को उपवास करके प्राण देने पड़े यह उचित नहीं है, इस भूमिका पर मोरारजीभाई की सरकार ने सन्त को वचन दिया कि सरकार यथा-सम्भव जल्दी सारे भारत देश में गोहत्याबन्दी का कानून बना करके, बाकी के दो राज्यों में भी प्रतिबन्ध लगायेगी। सरकार के वचन पर विश्वास रखकर उपवास के पाँचवें दिन, 26 अप्रैल को विनोबाजी ने उपवास पूरे किये।

परन्तु कई कारणों से, थोड़े दिनों में उस सरकार का पतन हुआ और उसके बाद अनेक सरकारें आयीं और गयीं, परन्तु किसी को वचन निभाने की सन्मति जगी नहीं है और आज भी देश के अनमोल पशुधन की अन्धाधुन्ध हत्या हो रही है।

### देवनार सत्याग्रह

आखिर यह भी सहन नहीं होने से, 1981 की 24 दिसम्बर को विनोबा ने जाहिर किया कि कृषि-प्रधान भारत देश में किसी भी उम्र के गाय-बैल न काटे जायें इसके वास्ते सम्पूर्ण गोवंश-हत्या-बन्दी कानून लाने के लिए सरकार के सामने बम्बई के देवनार कत्लखाने पर सत्याग्रह होगा। 11 जनवरी, 1982 को, देवनार कत्लखाने पर, अपने प्रतिनिधि के तौर पर श्री अच्युतराव देशपाण्डे को नियुक्त कर सत्याग्रह का श्रीगणेश कराया।

पिछले 31 वर्षों से यह सत्याग्रह सतत रात-दिन अखण्ड चल रहा है। बारी-बारी से सत्याग्रहियों की टोलियाँ कत्लखाने के दरवाजे पर खड़ी रह कर बैलों को अन्दर ले जाने से रोकती हैं। तब पुलिस उन्हें पकड़ लेती है और घण्टे, दो घण्टे में छोड़ देती है। मानो सत्याग्रह एक नित्यकार्य या नाटक हो गया है। सरकारों के पेट का पानी भी हिलता नहीं है। और अच्युतकाका की अखण्ड उत्कट तपश्चर्या अंत में बलिदान के रूप में निखर उठी। सत्याग्रह आज भी जारी ही है।

### मरण का पूर्व प्रयोग

परन्तु विनोबा ने माना कि उनसे जो कुछ भी हो सकता था, वह सब गोवंश को बचाने के लिए उन्होंने किया। अब तो, कर्ममुक्त होकर, सहज भाव से जो सलाह-सूचना दी जा सकती थी, वह देते हुए मृत्यु की राह देखना, यही काम बाकी था।

मृत्यु की प्रतीक्षा के विनोबा के ये दिन बड़े सुहावने थे। उनका यह अन्तिम पर्व उनके जीवनमन्दिर का मानो सुवर्ण कलश रूप ही था। आहिस्ता-आहिस्ता, सारा सिमटता जा रहा था। विनोबा स्वयं सिमटते जा रहे थे। उसका सादृश दर्शन होता था। अपने साथियों को कह दिया था कि अब मैं केवल अध्यात्म और आरोग्यविषयक बातें ही करूँगा। अध्यात्म में भी ब्रह्म-परब्रह्म आदि की शास्त्रीय तत्त्वचर्चा नहीं, परन्तु साधक की हृदय-ग्रन्थि-भेदन के वास्ते सहायक हो सके ऐसा अंगुलिनिर्देश! वैसे भी विनोबा की आरम्भ से ही भूमिका—अंगुलिनिर्देश की ही रही है। वे कहते—'मैं तो एक साइनबोर्ड हूँ, जिस पर लिखा है कि यह रास्ता इस मुकाम पर पहुँचायेगा। मार्गदर्शक पट्टियाँ कभी किसी का हाथ पकड़ कर उसे कहीं पहुँचाती नहीं, उनका काम केवल मार्ग दिखाने का है। बस, मेरा काम भी उतना ही है।'

'ब्रह्मविद्या-मन्दिर' के वे प्रेरक तथा प्रणेता थे। परन्तु वहाँ भी इसी सम्बन्ध की सुगंध फैलती थी। कहते थे—'मैं यहाँ एक शब्दकोश की तरह रहूँगा। जिसको जरूरत पड़े, आकर शब्द का अर्थ देख ले। जरूरत न पड़ी, तो वह अपने स्थान पर है। खुद होकर वह स्वयं किसी को अर्थ दिखलाने नहीं जायगा।'

1981 में अपनी नन्हीं-सी 'गीताई' पर लिख दिया—'त्यांचे कर्तव्य संपले'—उनके कर्तव्य पूरे हुए। अब तो मानो विनोबा

नाम का भी भार महसूस होता हो, इसलिए हस्ताक्षर करने में विनोबा की जगह 'राम-हरि' ही लिखते। प्रारम्भिक तब तक प्राण चलते रहे, तो साँस अन्दर लेते समय 'राम' और साँस बाहर निकालते समय 'हरि'—इस प्रकार सतत नापजप चलता। बाहर से वे यूँही बैठे हैं, ऐसा दिखता, परन्तु ध्यान से देखने पर मालूम पड़ता कि उनकी तर्जनी या तो पैर 'राम-हरि' के जप का ताल देता हुआ ऊँचा-नीचा हो रहा है।

वैसे भी विनोबा वर्षों से नित्यनिद्रा को मृत्यु का रिहर्सल यानी पूर्वप्रयोग कहते थे। उनके लिए निद्रा ही समाधि थी। वैसे तो आखिर के कितने ही सालों से शाम की प्रार्थना के बाद, छह ही बजे वे शय्या पर पहुँच जाते थे। आधी रात को ढाई-तीन बजे उनका दिन उग जाता। वे कहते—'रात में जगूँ उतनी देर मेरा नामस्मरण और ध्यान में जाता है। सो जाता हूँ तब समाधि लग जाती है।'

उनका मानना था कि मृत्यु का क्षण तय है और वह अटल है। 'पाँचम की छुट्टी नहीं होती'—यह भारत की लोकश्रद्धा है ही। विनोबा भी उसी डाल के पंछी थे। परन्तु अपने साथियों से कहते रहते कि आपको सौ साल पूरे करने हैं, अपने लिए कहते—'मैं जिस दिन मरूँ उसी दिन समझना कि मेरे सौ साल पूरे हो गये। दूसरों को कहते—जब मरना है तब मरो, परन्तु राग-द्वेष से मुक्त होने से पहले मरने की छुट्टी नहीं है। आत्म-साक्षात्कार करके ही मरने की छुट्टी उनसे थी। स्पष्ट दिख रहा था कि उनके राग-द्वेष विकार अत्यन्त क्षीण हो गये थे। वैसे तो आत्म-साक्षात्कारी व्यक्ति को आत्म-साक्षात्कारी व्यक्ति ही पहचान सकता है, इसलिए इस प्रकार के पहुँचे हुए, पाये हुए सिद्ध व्यक्ति के बारे में कुछ कहना वाणी-विलास ही हो जाता है। उनकी सहज स्थिति में वे अत्यन्त स्वस्थ-सभर लगते। ऐसा प्रतीत होता था कि अब उन्हें कुछ पाना बाकी रह नहीं गया है, अब वे केवल 'होने की' स्थिति में हैं।

1982 की 11वीं सितम्बर के उनके अन्तिम जन्मदिन पर इकट्ठी हुई मित्रमण्डली को कहा—'आज आनन्दपूर्वक मेरी जन्मजयन्ती मना रहे हो, उतनी ही आनन्द-खुशीपूर्वक मेरी 'मयंती' भी मनाओगे न?' कालदेव सामने आकर खड़ा रहे तब तुकाराम-जैसा गाना कि—

**काल आम्हांसी खाला अेअू  
आम्हीं आनंदे नाचू गाऊँ**

काल हमको खाने के लिए आ रहा है, परन्तु हम तो आनन्द से नाचते हुए गा रहे हैं। मृत्यु आयेगी तो देह की आयेगी, अब तो हम अमर भये, न मरेंगे—क्योंकि जिस कारण देह धारण करना होता है, वह कारण ही अब तो छूट गया। वे कभी-कभी 'संधारा'—'इच्छामृत्यु' आदि की भी बातें करते। परन्तु अन्तिम अवस्था में सारी इच्छाएँ मानो झड़ गयी थीं। कहते थे—'आखिर वही लोक अपना लोक है। यह घर तो पराया है। वहाँ हँसते-गाते जायेंगे। यहाँ चार दिन बिताने हैं—वे भी हँसते-गाते ही।'

आखिर के वर्षों में जो भी उन्हें मिलने आश्रम आता, उन्हें कहते—'देवनार जाओ और गोरक्षा के लिए सत्याग्रह करो।' परन्तु आखिर के दिनों में तो दो-तीन बातों का ही रटन चलता था।—'एक दिन जाना है रे भाई! पढ़ते रहो, गीताई और ऋग्वेद के 63 मंत्र।' अथवा 'बाबा को भूल जाओ, गीताई को याद रखो।'

लोग विनोबा को भूल जायें, उसमें उनको गहरी दिलचस्पी थी। अपने को 'आठवले' नहीं, 'विसरले विनोबा' कहते। 'बिसर चुके विनोबा' को स्थापित करने में उन्हें बड़ा मजा आता। कहते रहते—'लोग बाबा को बहुत हुआ तो उसकी शताब्दी तक याद रखेगा, फिर तो काल गंगा में विलीन होकर भुला दिया जायगा।' माँ का लाडला 'विन्या' बिलकुल 'बिना' बन जाय, यह उन्हें पसन्द था।

अन्तिम पर्व में विनोबा विनोदानन्द बन गये थे। खुद खूब हँसते थे और दूसरों को भी खूब हँसाते थे। उनकी कुटिया में से हास्य के फव्वारे उड़ते सुनायी देते। हँसी-खुशी के साथ ज्ञान की गंगा को तो बहना ही था।

एक भगवाधारी साधु आये। वर्षों से ऋषिकेश में रहते थे। उन्हें देखकर कहा—'ऋषिकेश में रहते हो—इन्द्रियों पर जिनका काबू है, वह है ऋषिकेश।'

वैसे ही एक बार सिने-अभिनेता जितेन्द्र दर्शनार्थ आया। उसे कहे—'नाम तो तुम्हारा 'जितेन्द्र' है, इसलिए इन्द्र को तो तुमने जीत ही लिया है, परन्तु इन्द्रियों को जीत लिया है या नहीं?'

दूसरे दिन अखबार में छपा—विनोबा ने जितेन्द्र को पूछा—'तुमने इन्द्र को जीता है या नहीं?'

ऐसा ही होता है अखबारों का प्रचार-कार्य। इसलिए तो विनोबा को कहना पड़ा था कि मुझे 'ब्रोडकास्ट' में नहीं, 'डीपकास्ट' में विश्वास है।

एक बार रेडियोवाले विनोबा-वाणी को रेकार्ड करने आये। परन्तु विनोबा कुछ बोलें, तब तो वे टेप करें न! विनोबा थोड़ी देर देखते रहे, फिर हँसते-हँसते कहा—'आपको बोला हुआ टेप करना आता है, परन्तु क्या मेरा "मौन" टेप करना आयेगा?'

## अन्तिम पर्व 8 नवम्बर से 15 नवम्बर 1982

अन्तिम सालगिरह 11 सितम्बर, 1982 को मनाया गया। परन्तु विनोबा तो अब ऐसे प्रदेश में पहुँच गये थे, जहाँ स्थल-काल-दिशा सब विलोपित था।

फिर भी वे अभी धरती पर थे। देहस्थ थे, इसलिए देहधर्म भी था। पाँचवीं नवम्बर को सारा दिन शरीर में हल्का-सा बुखार रहा। रात सवा आठ बजे श्वास का वेग बढ़ गया, नब्ज की गति बढ़ गयी, सारे शरीर में कम्पन और पसीना निकल आया। डॉक्टरों ने जाँच कर निदान किया—हृदयरोग का हमला है। चिकित्सा शुरू हुई।

बम्बई के हृदयरोग के निष्णात डॉक्टर आ गये। विनोबा-कुटी में ही इन्टेन्सिव केयर यूनिट खड़ा कर दिया गया। मानो वह बाबाकुटी ही नहीं रही। रोज की सादी-सी खटिया की जगह अस्पताल का पलंगा पास में ही कार्डियोग्राम का यंत्र और अस्पताल की श्मशानवत् चुप्पी। अन्दर जाने की मनाही।

परन्तु सातवीं तारीख को डॉक्टरों की बुलेटिन प्रकाशित हुई कि तबीयत एकदम सुधर रही है। सारे देश में समाचार फैल गये। सबको सांत्वना मिली।

परन्तु आठवीं की रात को कुछ नवीन परिवर्तन हुआ। रात सवा आठ बजे पानी-दवाई लेने का समय हुआ, विनोबा ने वह लेने से इनकार कर दिया। नवमी सुबह को भी दवाई लेने से इनकार कर दिया, पेय की भी ना। सेवक जयदेवभाई घबड़ा गये। पहले तो उन्हें लगा कि दवाई बन्द करनी होगी, परन्तु यहाँ तो आहार-पानी दोनों का इनकार हो रहा है। क्या समझा जाय!

आश्रम में श्रद्धेय शिवाजी (पूज्य आबा) तथा दादा धर्माधिकारीजी उपस्थित ही थे। दोनों ने बाबा को पानी लेने के लिए समझाया। आग्रह किया कि—कम-से-कम गंगाजल तो लीजिए। फिर भी इशारे से ना, ना और ना। ऐसी जोरदार ना कि उसे 'हाँ' में परिवर्तित करने की किसी की हिम्मत नहीं थी। और डॉक्टरों को फिर बुलेटिन में प्रकाशित करना पड़ा कि—आचार्य विनोबाजी की तबीयत तो निश्चित रूप से सुधर रही थी, परन्तु अब उनके आहार-दवा-पानी न लेने के निश्चय के कारण गम्भीर जोखिम खड़ा हुआ है।

देशभर में समाचार फैल गये और आश्रम में तो मुलाकाती तथा दर्शनार्थियों का ताँता लग गया। जिस दिन से पानी-औषधि-आहार छूटा, उस दिन से इन्टेन्सिव केयर यूनिट फिर से 'बाबाकुटी' बन गया था। कुटिया की दोनों तरफ की खुली दिशाओं से पूरी कुटिया तथा बाबा का परिपूर्ण दर्शन होता था। गाँव-गाँव से लोकप्रवाह भी बहना अब शुरू हो गया।

यह तो सन्त पुरुष का अन्तिम दर्शन था। उसे कौन छोड़ता? देश के कोने-कोने से लोग आ पहुँचे। छोटे-बड़े सभी लोग आये। तत्कालीन प्रधानमन्त्री इन्दिराजी भी राजीव को साथ में लेकर आयीं। उनको देखते ही विनोबा ने याद कराया—'पिछली बार कहा था वैसा 'राम-हरि' का जाप करती हो न?' अत्यन्त कमजोर हालत में भी प्रत्येक आगन्तुक के साथ की अपने निजी सम्बन्ध को पक्की कर लेते थे या तो एकाध शब्द से, या किसी इशारे से, या केवल मीठी मुस्कान से।

देवनार सत्याग्रह के संचालक श्री अच्युतकाका आये। उनसे कहा—'काका मैं थक गया।' बारह तेरह तारीख को तो ठीक रहा। पेशाब में भी एसिटोन जाता नहीं था। सब कुछ नॉर्मल था। चौदहवीं की बुलेटिन में प्रकाशित हुआ कि अशक्ति और थकान होते हुए भी वे होश में हैं और चेहरा आध्यात्मिक तेज से चमक रहा है। परन्तु चौदहवीं की शाम को नब्ज एकदम धीमी होती चली गयी। रक्तचाप भी एकदम नीचे आ गया। जाँच कर डॉक्टरों ने कह दिया—बस, अब तो घड़ी दो घड़ी का प्रश्न है। परन्तु उसी वक्त सेवक ने उनका ध्यान खींचा कि ऐसी हालत में भी उनके पैर का वह धीमा-सा ताल देना चल ही रहा था।

डॉक्टर ने कहा—दिस इज बीयान्ड अवर मेडिकल साइंस—आरोग्य-विज्ञान के बाहर की यह चीज है। डेढ घण्टे के बाद फिर से जाँच हुई तो नब्ज, रक्तचाप, उष्णतामान सारा नॉर्मल था।

पन्द्रह नवम्बर दीपावली का पुण्य-पर्व था। दीवाली का वह सुप्रभात कुछ नया रूप धारण कर ही प्रकट हुआ हो, ऐसा लगता था। दीपावली के इसी शुभ दिन भगवान महावीर ने चिर समाधि प्राप्त की थी। विनोबा के मानस पर महावीर स्वामी का प्रचण्ड प्रभाव था। तदुपरान्त, स्वामी रामतीर्थ का भी पुण्यदिन दीपावली का ही था, इसीलिए बाबा ने इसी दिन के लिए तो अपनी देह टिकाये रखा है, ऐसी बहुतों की कल्पना और श्रद्धा थी। और हुआ भी वैसा ही।

चौदह की रात को ही स्वदेश गयी हुई आश्रम की फ्रेंच कन्या वापस आ पहुँची थी। सुबह साढ़े सात बजे आकर वह बाबा को आग्रह करने लगी—यू मस्ट ड्रिंका तब बाबा ने स्नेह के साथ संकेत किया कि तुम ही पी लो। बाबा की खटिया के ऊपर की छत पर छोटी-सी तख्ती पर 'राम-हरि' लिखा हुआ था। जो भी उनको कुछ ग्रहण करने हेतु कहते तो वे इशारे से राम-हरि को दिखा देते थे। फिर एनिमा भी लिया और सेवक द्वारा चद्दर बदलवायी, कपड़े भी बदले और स्वच्छ-शान्त होकर बिस्तर पर सीधे लेट गये। घड़ी की सूई साढ़े नौ बजने पर आयी। चेहरा एकदम शान्त था। आँखें बन्द थीं। श्वासोश्वास के प्रत्येक आवन-जावन हम महसूस कर सकें ऐसी विशद और पैर का 'राम-हरि' का ताला। घड़ी की सूई ठीक साढ़े नौ पर पहुँची और अन्तिम श्वास लिया। तुरन्त ही शंख ध्वनि हुई और साथ में जयघोषणा—राम-हरि की जय।

और इसी तरह एक पुण्यजीवन की समाप्ति हुई। धरती पर की वह पुण्य सुगंध थी। वातावरण अत्यन्त शान्त और स्वस्थ था। मानो कोई सुमंगल घटना प्रत्यक्ष साकार हो रही हो, वैसा सभी ने अनुभव किया। सोलह तारीख को भारतभर से आये हजारों लोगों की उपस्थिति में धाम नदी के बीच, विनोबा-सेविका सुश्री महादेवीताई के हाथों से अग्निसंस्कार हुए और एक दिव्यात्मा परमेश्वर में विलीन हुआ।

आज भी छोटी-सी बाबाकुटी की उनकी समाधि पर अंकित 'गीताई पढ़ते रहो' का जीवन सन्देश बहुतों को प्रेरणा दे रहा है।

